

संस्कृत पाठमाला ५

राहुल सांकृत्यायन

श्री विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला २७

॥ श्रीः ॥

संस्कृत पाठमाला

पञ्चम पुस्तक

लेखकः—

महापण्डित राहुलसांकृत्यायन

चौखम्बा विद्या भवन, बनारस-१ .

[सं० २०१३] [ई० १९५६

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्या भवन

चौक, बनारस-१

The Chowkhamba Vidya Bhawan

Chowk, Banaras.

(INDIA)

1956

मूल्य—

प्रथम पुस्तक ॥) द्वितीय पुस्तक ॥।) तृतीय पुस्तक ॥।)

चतुर्थ पुस्तक ॥।) पञ्चम पुस्तक ॥।=) १-५ पुस्तक २॥=)

मुद्रक—

विद्या विलास प्रेस,

बनारस-१

दो शब्द

३० वर्ष पहिले १९२६ ई० में मैं बौद्धधर्मके अध्ययनके लिये सिंहल (श्री लङ्का) गया था। उस समय विद्यालंकार परिवेण (विहार) में रहते वहाँके भिक्षुओंको संस्कृत पढ़ाने लगा। सभी जगहोंके विद्यार्थियोंकी तरह वहाँके विद्यार्थी भी संस्कृत भाषासे बहुत डरते थे। उन्हें सुगम रास्तेसे ले जानेके लिये ये पाँच पोथियाँ लिखी गईं, जिनमें पाँचवींमें छन्द और अलंकार भी रख दिये गये। विद्यार्थियोंको ये बहुत सुगम प्रतीत हुईं। इन्हें सिंहल भाषा और सिंहल लिपिमें उसी समय छापा गया। अब तक इनके कितने ही संस्करण छप चुके हैं। मित्रोंने इन्हें हिन्दीके साथ छापनेके लिये कहा। पूर्ववत् छापना अच्छा न समझ मैंने बहुतसे परिवर्तन कर दिये। कितने ही नये उद्धरण दिये, और इनका रूप पाठमालाका बना दिया।

पाठक पहिली बार व्याकरणवाले भागको छोड़ सकते हैं। हाँ, पाठको कई बार दुहराना चाहिये।

चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला एवं चौखम्बा विद्याभवनके स्वामी तथा संस्कृत ग्रन्थोंके सबसे बड़े उद्धारक और प्रचारक बाबू जयकृष्णदासजी गुप्तने बड़ी प्रसन्नता और तत्परतासे इनके प्रकाशनका भार अपने ऊपर लिया। यदि संस्कृतके सार्वजनीन प्रसारमें इनसे सहायता मिली, तो मैं अपने प्रयत्नको सफल समझूँगा।

मसूरी १३-२-५६ राहुल सांकृत्यायन

पञ्चम पुस्तक

प्रथमः पाठः

(उषा)—

व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानं आगात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमंगिरस्तमा अजीगः ॥ १ ॥
एते त्ये भानवो दर्शतायाः चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतानि आपृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोनी उषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥
प्रति द्युताना अरुषासो अश्वाः चित्रा अदृश्रन् उषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥

—ऋग् ७।७५ (वसिष्ठ)

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिः अनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥
उषो देवि अमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठसि अमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्यावर्वृत्स्व ॥ ३ ॥
अव स्यूमेव चिन्वती मघोनी उषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आपृथिव्याः ॥ ४ ॥

—ऋक् ३।६१ (विश्वामित्र) ।

[दिवपुत्री उषा सत्यके साथ महिमा प्रकट करती आई । (उसने) अप्रिय शत्रु अन्धकारको दूर किया, (और) अति व्यवहार योग्य पथको प्रशस्त किया ॥१॥

चमत्कारिणी उषाकी ये वे दर्शनीय अमृत प्रभायें आईं। दिव्य व्रतोंको जनमाती अन्तरिक्षको पूरती फैलीं ॥ ३ ॥

अन्नवाली, अद्भुत धनवाली, वसुओंके धनकी स्वामिनी, सूर्यपत्नी, ऋषियों द्वारा प्रशंसित, ऐश्वर्यवती, यजमानोंसे स्तूयमाना, जीर्ण करती उषा उग रही है ॥५॥

दीप्तिमान् अरुण अश्व उषाको वहन करते दीख रहे हैं। अपने सेवकोंको रत्न प्रदान करती नानावर्णा उज्ज्वल (उषा देवी) रथसे जाती है ॥ ६ ॥

अन्नवती, प्रचेतनावती, धनवती हे उषा, स्तुतिकर्ताके स्तोत्रको तुम स्वीकार करो। हे सबकी प्रिया, पुरधारिणी, प्राचीना युवती देवि, तुम व्रतके अनुसार आचरती हो ॥ १ ॥

सूक्ति कहती चन्द्र-रथा, अमर उषा देवी, तुम प्रभासित हो। तुम्हें सुनहले वर्णवाले बलशाली सुनियन्त्रित जो अश्व ले आवें ॥ २ ॥

हे उषा, सारे भुवनोंके सामने ऊपर अमृतध्वज (सी) स्थित हो। एक अर्थको लिये (सूर्य) के चक्रकी तरह चलती हे नवीना, तुम घूमती रहो ॥ ३ ॥

धनवती सूर्यपत्नी उषा वस्त्रकी तरह (अन्धकारको) हटाती जाती है। सुख उपजाती सुभगा सुदर्शना (उषा) द्युलोकके छोरसे पृथिवीतक फैली ॥ ४ ॥]

व्युषा आवो–उषा व्यावः (उषा रक्षा करती) **ऋतं** (सत्य) **दिविजा** (स्वर्गजा) **आविष्कृण्वाना** (आविष्कार करती) **आगात्** (आई) **द्रुह्** (द्रोही) **तमः** (अन्धकार) **अप-आवः** (अपसारित करती) **अजुष्टः** (अप्रिय) **अंगिरस्तमा** (सबसे प्यारी) **अजीगः** (प्रशस्त किया) **त्ये** (वे) **भानुः** (प्रभा) **दर्शता** (दर्शनीय) **अमृतासः** (अमृत, बहुवचन) **आगुः** (आईं) **व्रतं** (शुभ कर्म) **दैव्यं** (दिव्य) **आपृणन्** (पूरा करता) **व्यस्थुः** (फैले) **वाजिनीवती** (अन्नवाली) **योषा** (भार्या) **चित्रं** (अद्भुत) **मघः** (धन) **रायः** (धन, प्रदान) **ईशे** (स्वामित्व करती) **वसवः** (वसु देवगण) **ऋषिष्टुता** (ऋषि-स्तुता) **जरयन्ती** (जीर्ण करती) **मघोनी** (धनवती) **उच्छति** (उगती है) **वह्निः** (यज्ञ-वाहक) **गृणाना** (स्तुति की जाती) **प्रतिद्युताना** (द्युतिमान्) **अरुषासः** (लाल) **चित्रः** (विचित्र) **अदृश्रन्** (दिखाई दिये) **वहन्तः** (ढोते) **शुभ्रा** (स्वच्छ) **विश्वपिशा** (सर्व रंगवाली) **विधत्**

(प्रशंसक) वाजं (अन्न) वाजिनी (धनवती) प्रचेताः (सजग) स्तोमः (स्तोत्र) जुषस्व (सेवन कर) गृणत् (स्तुतिकर्ता) पुरन्धिः (पुर धारिणी) अनुव्रतं (व्रत-अनुकूल) अमर्त्या (अमर) विश्ववारा (सर्व वाञ्छनीय) विभाहि (चमको) सूनृता (सच्ची) ईरयन्ती (कहती, चलती) आवहन्तु (लावें) सुयमासः (सुनियन्त्रित) पृथु (बड़ा) पाजः (बल) प्रतीची (सम्मुख) विश्वा (सब) ऊर्ध्वा (ऊपर, आकाशमें) केतुः (पताका) चरणीयमाना (चरमाणा, आचरती) नव्यसी (नवीना) आववृत्स्व (घूमो) स्यूमा (वस्त्र) अवचिन्वती (अपचयन करती) सुदंसा (सुदर्शना) अन्ताद् (अन्तसे) दिव् (स्वर्लोक) पप्रथे (फैली)।

(क) छन्द—

(१) छन्दःशास्त्रमें ह्रस्व स्वरको लघु कहते हैं, जिसका चिह्न है (।)।

(२) संयुक्तके पहले या छन्दके पूर्वार्ध और उत्तरार्धके अन्तका ह्रस्व भी दीर्घकी तरह गुरु समझा जाता है, गुरुका चिह्न है (ऽ)।

ह्रस्व या लघु एक मात्राका होता है और दीर्घ या गुरु दो मात्राका।

(३) छन्दका चौथा भाग पाद कहा जाता है। विरामको यति कहते हैं।

(४) **अक्षरछन्द**—अक्षरोंकी संख्याके अनुसार तोले जानेवाले छन्द अक्षरछन्द कहे जाते हैं, जैसे वेदकी गायत्री (२४ अक्षर) और लौकिक शशिवदना।

(५) **मात्राछन्द**—मात्रासे गिने जानेवाले आर्या आदि छन्द मात्राछन्द कहे जाते हैं। यही दो छन्दोंके भेद हैं।

(६) अक्षरछन्दके तीन भेद हैं—सम, अर्धसम, विषम। पादोंमें अक्षर एक संख्यामें हों तो सम, दो-दोमें समान तो अर्धसम, सबमें भिन्न-भिन्न तो विषम छन्द।

(७) अक्षरछन्दोंमें तीन गुरु-लघुओंका गण होता है (आर्यामें चारका)।

(८) तीन गुरु-लघुओंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें आठ प्रकारसे रक्खा जाता है, जिन्हें यगण आदि कहते हैं। इनको निम्न श्लोकसे आसानीसे याद रक्खा जा सकता है—

आदि-मध्या-वसानेषु य-र-ता यान्ति लाघवम्।
भ-ज-सा गौरवं यान्ति म-नौ तु गुरु-लाघवम्॥

[आदि, मध्य अरु अन्तमें, य र त लघु होहिं।
भ ज स तहँ गुरु बनहिं, म न गुरु-लघु होहिं ॥]

आठों गणोंके रूप निम्न प्रकार हैं—

यगण (।ऽऽ)	रगण (ऽ।ऽ)	तगण (ऽऽ।)	भगण (ऽ।।)
जगण (।ऽ।)	सगण (।।ऽ)	मगण (ऽऽऽ)	नगण (।।।)

द्वितीयः पाठः

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलां, सस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्रज्योत्स्नां पुलकितयामिनीं फुल्लकुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्।
सुखदां वरदां मातरम्॥ वन्दे मातरम्॥ १॥
अनन्तकोटिकलकलनिनादकराले, अनन्तकोटिभुजैर्धृतखरकरवाले।
कथं त्वं अम्ब अबले।
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीं, रिपुदलवारिणीं मातरम्॥ वन्दे० ॥२॥
त्वं हि विद्या त्वं हि धर्मः, त्वं हि हृदि त्वं हि मर्मणि, त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाहुषु त्वमम्ब शक्तिः हृदये त्वं हि भक्तिः,
तवैव प्रतिमा ननु मन्दिरे मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी, कमला कमलवनविहारिणी,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्।
नमामि कमलां अमलां अतुलां, सुजलां सुफलां मातरम्॥ वन्दे० ॥३॥
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां, धरणीं भरणीं मातरम्॥ वन्दे० ॥४॥

सुजला (सुन्दर जलवाली) सुफला (सुन्दर फलवाली) मलयजं (चन्दनं) सस्यं (हरियाली) शुभ्रं (स्वच्छ) ज्योत्स्ना (चांदनी) पुलकिता (गद्गद) यामिनी (रात) द्रुमदलं (वृक्षका पत्ता) निनादः (घोष) कराला (भयंकरा) खरः (तीक्ष्ण) करवालं (तलवार) तारिणी (तारनेवाली) वारिणी

(हटानेवाली) **मर्म** (हृदय) **ननु** (तो) **प्रहरणं** (हथियार) **वाणी** (सरस्वती) **कमला** (लक्ष्मी) **सुस्मिता** (सुन्दर मुसकानवाली) **भूषिता** (भूषणयुक्त) **धरणी** (धारण करनेवाली) **भरणी** (भरण करनेवाली)।

(ख) काव्य—

१. **काव्य**—रसात्मक वाक्य काव्य है, जिसके दो भेद हैं—दृश्य और श्रव्य।

(१) **दृश्य**—अभिनय द्वारा आँखसे देखा जानेवाला दृश्य काव्य है, जैसे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' आदि नाटक।

(२) श्रव्य—रघुवंश आदिकी तरह सुने या पढ़े जानेवाले काव्य श्रव्य हैं।

२. **काव्य**—रचनाभेदसे तीन प्रकारका होता है—गद्य, पद्य, मिश्र।

(१) गद्यमें अक्षरमात्रा आदिकी व्यवस्था नहीं होती, जैसे दशकुमारचरित, कादम्बरी।

(२) पद्य छन्दोबद्ध होता है, जैसे रघुवंश आदि।

(३) मिश्र गद्य और पद्य मिश्रित होता है, जैसे रामायणचम्पू, पठनीय नाटक आदि।

३. **रस**—काव्यके आत्मा हैं, जो कि द्रष्टा और श्रोताको अपनेमें सराबोर कर देते हैं। ये नौ हैं—१. शृङ्गार, २. हास्य, ३. करुण, ४. रौद्र, ५. वीर, ६. भयानक, ७. वीभत्स, ८. अद्भुत, ९. शान्त।

४. **अलंकार**—आभूषणकी तरह ये कविताकामिनीके शोभावर्धक होते हैं। इनके दो भेद हैं—१. शब्दालंकार, २. अर्थालंकार।

(१) जो शब्द-वैचित्र्य द्वारा शोभा प्रदान करता है, वह शब्दालंकार है।

(२) अर्थ-वैचित्र्यसे भूषित करनेवाला अर्थालंकार है।

तृतीयः पाठः

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी विगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मेरुदंडः ॥ १ ॥

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥ २ ॥

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः ॥ ३ ॥

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन् अदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ ६ ॥

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनंगलेखक्रिययोपयोगम् ॥ ७ ॥

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतां इच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ ८ ॥

कपोलकंडूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥ ९ ॥

लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥ १३ ॥

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषांगनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलंबिबिंबास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ॥ १४ ॥

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुःकम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखंडिबर्हः ॥ १५ ॥

—कुमारसंभव (कालिदास) सर्ग १

[है उत्तर दिशामें देवतास्वरूप हिमालय नाम पर्वतराज, (जो) पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रोंको अवगाहन करके पृथिवीके मेरुदंडकी तरह स्थित (है) ॥

दोहनमें दक्षदोहक मेरुके रहते भी सब पर्वतोंने जिसे बछड़ा बना, पृथु द्वारा प्रदर्शित पृथिवीसे चमकीले रत्न और महौषधियाँ दूहीं ॥ २ ॥

अनन्त रत्नोंके जनयिता जिसके लिये हिम सौभाग्यनाशक नहीं हुआ, गुणके समूहमें एक दोष, जैसे चन्द्रकिरणोंमें विलीन होता (उसका) कलंक ॥ ३ ॥

जिसमें मारे हाथियोंका हिम गलनेसे धुल गया रक्तवाला पद न देखकर भी, किरात लोग सिंहोंके नख-छिद्रसे मुक्त मुक्ताफलोंकी सहायतासे मार्ग पाते हैं ॥ ६ ॥

जहाँ (सिन्दूर आदि) धातुओंके रससे लिखित अक्षरवाले हाथियोंके सेहुयें जैसी अरुण भूर्ज-छाल, विद्याधरी सुन्दरियोंके लिये काम(-प्रेम)-पत्रिकाके उपयोगमें आती हैं ॥ ७ ॥

जो (हिमालय) गुहाके मुखोंसे उठे वायु द्वारा बांसके छिद्रोंको भरता, गानेवाले किन्नरोंको तान देनेवाला जैसा होना चाहता है ॥ ८ ॥

जहाँ कपोलकी खुजलाहट मिटानेके लिये हाथियोंद्वारा रगड़े गये देवदारवृक्षोंके दूध निकलनेसे उत्पन्न गन्ध पर्वतपादोंको सुगंधित करता है ॥ ९ ॥

चमरियाँ पुच्छको हिलानेसे आई शोभावाले जहाँ-तहाँ चन्द्रकिरणोंसे श्वेत (अपने) चंवरसे जिसके गिरिराज शब्दको सार्थक बनाती हैं ॥ १३ ॥

जहाँ वस्त्र-हरणसे लज्जित किन्नरस्त्रियोंके लिये गुहाद्वारपर लटकते शरीरवाले मेघ दैवात् परदा बन जाते हैं ॥ १४ ॥

गंगाके जलपातोंके फुहारोंको वहन करनेवाला, क्षणभर देवदारुको कंपित करनेवाला, मयूरपिच्छको फुलानेवाला, जिसका वायु मृग ढूँढ आये किरातोंद्वारा सेवित होता है ॥ १५ ॥

छन्द—उपेन्द्रवज्रा (यदि तौ जगौ गः) ।

नगः (पहाड़) **तोयनिधिः** (समुद्र) **पूर्वतोयनिधिः** (बंगालकी खाड़ी) **अपरतोयनिधिः** (अरबसागर) **विगाह्य** (पार कर) **परिकल्प्य** (बना कर) **दोग्धा** (दूहनेवाला) **भास्वत्** (प्रभावान्) **पृथुः** (पौराणिक राजा, पृथिवी-दोहक)

उपदिष्टः (दिखलाया) **दुदुहुः** (दूहा, लिट्, बहुवचन, प्रथमपुरुष) **धरित्री** (पृथिवी) **हिमं** (बरफ) **सन्निपातः** (संचय) **निमज्जति** (निमग्न होता है) **इन्दुः** (चन्द्र) **अंकः** (कलंक) **तुषारं** (हिम) **स्रुतिः** (बहना, गलना) **धौतं** (धुला) **रक्तं** (रुधिर) **द्विपः** (हाथी) **विदन्ति** (पाते हैं) **मुक्ताफलं** (मोती) **केसरी** (सिंह) **किराताः** (हिमालयकी आदिम जाति) **न्यस्तः** (छोड़ा, लिखा) **धातुरसः** (सिन्दूर) **भूर्जः** (भोजवृक्ष) **त्वक्** (छाल) **कुंजरः** (हाथी) **कुंजरविन्दुः** (हाथियोंके जवानीके दाग) **शोणः** (लाल रंग) **व्रजन्ति** (होते हैं) **अनंगलेखः** (प्रेमपत्रिका) **कीचकः** (जंगली बाँस) **दरी** (गुफा) **समीरणः** (वायु) **उद्गास्यन्** (गानेवाला) **करी** (हाथी) **कंडूः** (खुजली) **विघट्टितः** (रगड़ा) **सरलद्रुमः** (देवदार वृक्ष) **स्नुतः** (बहा) **प्रसूतः** (पैदा हुआ) **सानु** (पहाड़की जड़) **सुरभिः** (सुगंधि) **लांगूलं** (पूँछ) **विक्षेपः** (हिलाना) **विसर्पिः** (आया) **मरीचिः** (किरण) **अर्थयुक्तं** (सार्थक) **बालव्यजनं** (चँवर) **चमरिः** (याक् पशु) **आक्षेपः** (उड़ाना, हरना) **व्रिलज्जिता** (लज्जित) **किंपुरुषः** (किन्नर, किरात) **विलंबी** (लटकनेवाला) **तिरस्करिणी** (परदा) **जलदः** (मेघ) **निर्झरः** (जलप्रपात, झरना) **सीकरः** (फुहार) **वोढा** (ढोनेवाला) **अन्विष्टं** (ढूँढ़ा) **आसेव्यते** (सेवित होता है) **शिखंडः** (मोरका पिच्छ, पाँख)।

छन्द—

(१) **अनुष्टुप्**—इसके चार पादोंमेंसे हरेकमें आठ-आठ अक्षर होते हैं, अर्थात् यह अक्षरछन्द है। यदि पादका सातवाँ अक्षर लघु हो, तो विपुला अनुष्टुप्, इसी तरह और भी इसके कई भेद हैं।

उदाहरण (सांकृत्यायनका)—

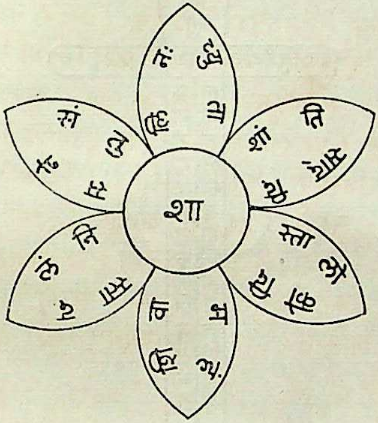
शास्ताऽऽलोको दिशामहं, शिवाशा स्तादलं निशा।
शासने सन्तु शालिनः, च्युताशाः शान्तिसाद् दिशा॥

(पद्मबंध, चित्रालंकार)

[मैं उपदेष्टा, दिशाओंका आलोक हूँ, मंगल आशा हो, रात बस हो, (बुद्धके) शासनमें (लोग), निपुण हों निराश दिशा शान्तिवाली हो।]

अलंकार—

१. चित्र—अक्षरोंको विशेष क्रमसे रखनेपर जहाँ पद्य पद्म, खड्ग आदिका रूप लेते हैं, उसे चित्रालंकार कहते हैं। जैसे पद्मबन्ध—



अथवा खड्गबन्ध—

मा भूः क्षणं कार्यहीनो मारस्तत्रापकारकः
मा प्रमादं गमः तात, नृजातिः दुर्लभा सदा।
दायार्हाणि सदैतानि दानं शीलं तथा क्षमा
माताऽकुशलपूगस्य प्रमत्तिः दुर्मनस्तमा॥

[क्षण भर (भी) बेकार मत रहो, वहाँ दुर्विचार अपकारक होता है। तात,

आलस्यगत मत हो, मानवजन्म दुर्लभ है। सत्पुरुषके दायभाग ये दान, शील और क्षमा हैं। पापसमूहकी जननी अत्यन्त दुष्टा प्रमत्ति (प्रमाद) है।]



२. श्लेष—अर्थभेदसे भिन्न होते भी शब्द उच्चारणमें अपने रूपको जब छिपा देते हैं, तो उसे श्लेषालंकार कहते हैं, जैसे—

असावुदयमारूढः कान्तिमान् रक्तमण्डलः।
राजा हरति लोकस्य हृदयं मृदुभिः करैः॥

—काव्यादर्श (दण्डी) २–३०८

[यह कान्तिमान् रक्ताभ उगा राजा (चन्द्र या नृप) (अपने) मृदु करों (किरणों या शुल्क) से लोकके दिलको हर लेता है।]

चतुर्थः पाठः

महामायाऽपि देवी पात्रे तैलं इव दशमासं कुक्षौ बोधिसत्त्वं परिधार्य परिपूर्णगर्भा ज्ञातिगृहं गन्तुकामा शुद्धोदनमहाराजाय अवोचत्—'इच्छाम्यहं देव, स्वकुलस्य देवहदनगरं गन्तुं' इति। राजा 'साधु' इति स्वीकृत्य कपिलवस्तुतो यावद् देवदहनगरं मार्गं समं कारयित्वा देवीं सुवर्णशिविकायां निषाद्य अमात्यसहस्रेण महता परिवारेण च प्रैषयामास।

उभयोः नगरयोः अन्तरे किल उभयनगरवासिनां लुम्बिनी नाम मंगलशालवनं, तस्मिन् समये मूलतः आरभ्य यावद् शाखाग्रं सर्वं एकपालिफुल्लं अभूत्। शाखान्तरेषु च पुष्पान्तरेषु च पंचवर्णभ्रमरगणा नानाप्रकाराश्च शकुनिसंघा मधुरस्वरेण विकूजन्तो विचरन्ति। सकलं लुम्बिनीवनं चित्रलतावनसदृशं महानुभावस्य राज्ञः सुसज्जितापणमंडलं इव अभूत्।

तद् दृष्ट्वा देव्याः शालवनक्रीडां कर्तुकामता उदपादि। अमात्या देवीं गृहीत्वा शालवनं प्राविशन्। सा मंगलशालमूलं गत्वा शालशाखां गृहीतुकामा बभूव। शालशाखा सुस्वेदितवेत्राग्रमिव देव्या हस्तपथं उपाजगाम। सा हस्तं प्रसार्य शाखां जग्राह। तावदेव तस्याः कर्मजवाताः चेलुः। अथ अस्याः तिरस्करिणीं परिक्षिप्य परिवारजनः परिचक्राम। शालशाखां गृहीत्वा स्थीयमानाया एव अस्या गर्भोत्थानं बभूव। तत्क्षणं एव चत्त्वारोऽपि शुद्धचित्ता महाब्रह्माणः सुवर्णजालं आदाय सम्प्राप्ताः, तेन सुवर्णजालेन बोधिसत्त्वं सम्प्रगृह्य मातुः पुरतः स्थापयित्वा 'आत्तमना देवि भव, महाशाक्यः ते पुत्र उत्पन्न' इति ऊचुः।

—जातकार्थकथा, अविदूरे निदानम्,

कुक्षिः (कोख) परिधार्य (धारण कर) ज्ञातिः (कुल) साधु (अच्छा) शिविका (पालकी) निषाद्य (बैठाकर) अमात्यः (राजदरबारी) परिवारः (परिजन) एकपालि (एकपाँतीसे) शकुनिः (पक्षी) चित्रलता (अद्भुत वेलि) महानुभावः (वैभवशाली) आपणं (बाजार) कर्तुकामता (करनेकी इच्छा) उदपादि (उत्पन्न हुई) मंगलशालः (जिस शालके नीचे बुद्धका जन्म हुआ) सुस्वेदिता (अच्छी तरह कमाई) वेत्राग्रं (बेंतका छोर) हस्तपथः (हाथकी पहुँच) कर्मजवाताः (गर्भस्रावसहायक वायु) तिरस्करिणी

(कनात) **परिचक्राम** (हट गया) **स्थीयमाना** (खड़ी) **आत्तमना** (सन्तुष्ट) **महाशाक्यः** (महाप्रतापी) **ऊचुः** (बोले, लिट्)।

अलंकार—

३. वक्रोक्ति—दूसरे अर्थसे कही बातका दूसरी तरह अर्थ लगाकर चमत्कार पैदा करना, जैसे—

अहो, केनेदृशी बुद्धिः दारुणा तव निर्मिता।
त्रिगुणा श्रूयते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्वचित्॥

[अहो केन दारुणा तेरी ऐसी बुद्धि बनाई गई ? तीन गुणोंवाली बुद्धि सुनी जाती है, न कि कहीं दारुमयी।]

यहाँ इसमें वादी प्रथमार्धको बोलते हुए बुद्धिके दारुण (कठोर) होने की शिकायत करता है। प्रतिवादी उत्तरार्धमें दारुका अर्थ काष्ठ लेकर मजाक उड़ाता है, कि बुद्धि दारुमयी कहीं नहीं होती।

४. यमक—जिस अर्थालंकारमें उन्हीं स्वरों, व्यञ्जनोंको उसी क्रममें दुहराया जाता है, यद्यपि अर्थमें भेद होता है, जैसे—

सरस्वति प्रसादं मे, स्थितिं चित्त-सरस्वति।
सरस्वति, कुरुक्षेत्र,-कुरुक्षेत्र-सरस्वति॥

[हे सरस्वति, मुझे सुमतिका प्रसाद दें, चित्तसागरमें हे कुरुक्षेत्र-क्षेत्रकी सरस्वति निवास कर।]

सर (जा) **स्वति** (सुमति) **सरस्वति** (सरस्वान्में, समुद्रमें) **सरस्वति** (संबोधन) **सरस्वति** (इस नामकी कुरुक्षेत्रवाली नदी, संबोधन)।

५. पुनरुक्तवदाभास—इसमें एक ही अर्थ भिन्न-भिन्न आकारके शब्दों द्वारा कहा जाता है, जैसे—

भुजंग-कुंडली व्यक्त-शशि-शुभ्रांशु-शीतगुः।
जगन्त्यपि सदाऽपायादव्याच्चेतोहरः शिवः॥

[भुजंगके कुण्डलवाले उज्ज्वल कपूर जैसे तथा निर्मल किरणवाले चन्द्रमा वाले, संसारमें मनोहर शिव जगत्में सदा अपायसे रक्षा करें।]

सारे श्लोकके अर्थमें यहाँ कोई पुनरुक्ति नहीं है, भुजंग, कुण्डली एक ही सर्पके

वाची हैं, शशि, शुभ्र, शुभ्रांशु, शीतगु चन्द्रके पर्याय हैं, पायाद्, अव्याद् (रक्षा करें) के अर्थ भी समान हैं, पर जैसा कि ऊपर अर्थ किया गया, यहाँ पुनरुक्ति नहीं है ।

पञ्चमः पाठः

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै,
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं,
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद, प्रियायाः,
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीं उद्गृहीतालकान्ताः,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययाद् आश्वसन्त्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीं,
अव्यापन्नां अविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां,
सद्यःपाति प्रणयि-हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रां अवन्ध्यां,
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः,
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

—मेघदूत (कालिदास)

[वर्षाकालके समीप आनेपर प्रियाके जीवनका अवलम्ब चाहनेवाले, मेघ द्वारा अपना कुशल समाचार भेजते, उस (प्रवासी यक्ष) ने ताजे कुटज-पुष्पोंसे उसके लिये अर्घ देते, सन्तुष्ट हो प्रीतिपूर्वक स्वागत-वचन कहा ॥ ४ ॥

पुष्करावर्त (नामक) जगत्प्रसिद्ध (मेघों) के वंशमें जनमे, इच्छानुसार रूप धरनेवाले तुम इन्द्रके प्रधानपुरुष हो, यह मैं जानता हूँ। इसलिये भाग्यवश बन्धुओंसे दूर रहनेवाला मैं तुमसे माँगने वाला हुआ, गुणीके पास व्यर्थ होनेवाली प्रार्थना अधमके पासकी सफलकामनासे बेहतर है ॥ ६ ॥

तुम सन्तप्तोंके शरण हो, सो मेघ, प्रियाके लिये, कुबेरके क्रोधसे वियोगी बनाये गये मेरा संदेश ले जाओ। यक्षेश्वरों (कुबेर) की अलका नाम नगरीको तुम्हें जाना है, (जिसके) बाहरी उद्यानोंमें शिवके सिरके चाँदकी चाँदनीसे धुले प्रासाद हैं ॥ ७ ॥

पवनपथपर चलते तुम्हें केशोंके छोरको पकड़े, विश्वाससे धैर्य धरती पथिक-वनितायें अवलोकन करेंगी। तुम्हारे (मेघके) सज्जित हो जानेपर कौन (पुरुष) वियोगिनी पत्नीकी उपेक्षा करेगा, सिवाय ऐसे जनके जो कि मेरी तरह पराधीन-वृत्तिवाला है ॥ ८ ॥

अव्याहत-गति तुम दिन गिननेमें लगी अपने पतिकी अकेली पत्नी, उस न मरी भ्रातवधू को अवश्य देखोगे। अङ्गनाओंके कुसुम समान प्रायः तुरन्त झर पड़नेवाले प्रेमी हृदयको आशाका बन्धन रोक लेता है ॥ १० ॥

जो महीको अङ्कुरित और सफला बना सकता है, उस तुम्हारे श्रवणमनोहर गर्जनको सुनकर मानस जानेके उत्सुक मृणालखंडोंके पाथेयवाले राजहंस कैलासतक, आकाशमें तुम्हारे साथी बनेंगे ॥ ११ ॥]

प्रत्यासन्न (आ उपस्थित) **नभस्** (वर्षामास) **दयिता** (प्रिया) **जीमूतः** (मेघ) **हारयिष्यन्** (हरण, प्रेषण कराते) **प्रवृत्तिः** (समाचार) **प्रत्यग्रं**

(ताजा) **कल्पितं** (कृत) **प्रीतिप्रमुखं** (प्रीतिपूर्वक) **व्याजहार** (कहा, लिट्) **पुष्करावर्तः** (मेघ जाति) **प्रकृतिः** (प्रधान) **मघवा** (इन्द्र) **कामरूपं** (इच्छानुसार रूपधारी) **अर्थी** (याचक) **दूरबन्धुः** (दूर जिसके बन्धु हैं) **याञ्चा** (याचना) **मोघा** (निष्फला) **अधिगुणः** (गुणी) **लब्धकामा** (कामना प्राप्त हो जिसमें) **पयोदः** (मेघ) **धनपतिः** (कुवेर) **विश्लेषितः** (वियोजित) **वसतिः** (वस्ती, नगरी) **बाह्योद्यानं** (बाहरके उद्यान) **धौतं** (धुला) **हर्म्यं** (महल) **पवनपदवीं** (वायुपथ) **उद्गृहीतः** (ऊपर पकड़ा) **अलकः** (केश) **प्रत्ययः** (विश्वास) **आश्वसन्ती** (धैर्य धरती) **सन्नद्धः** (तैयार) **विरहविधुरा** (विरहकी वियोगिनी) **जाया** (पत्नी) **वृत्तिः** (जीविका) **एकपत्नी** (जो पतिकी अकेली पत्नी है) **अव्यापन्ना** (न मरी) **भ्रातृजाया** (भाईकी बहू) **अविहतगतिः** (जिसकी गति रुक न सके) **आशाबन्धः** (आशाका बन्धन) **सद्यःपाति** (तुरन्त गिर पड़नेवाला) **प्रणयी** (प्रेमी) **विप्रयोगः** (वियोग) **रुणद्धि** (रोकता, थामता है) **उच्छिलीन्ध्रा** (कंदलित, अङ्कुरित) **अवन्ध्या** (उर्वरा) **श्रवणसुभगः** (सुननेमें सुंदर) **मानसोत्काः** (मानससर जानेको उत्सुक) **बिसं** (मृणाल) **संपत्स्यन्ते** (प्राप्त होंगे) **नभः** (आकाश) **सहायः** (साथी, मित्र) ।

छन्द—

(२) **शशिवदना**—छ अक्षरोंके पादों का छन्द, एक पदमें न तथा य गण हैं, लक्षण—**शशिवदना न्यौ** (एक नगण ।।। और एक यगण ।ऽऽ वाली) जैसे—

विजयिनि बुद्धे मनसिजयुद्धे । कुसुममवर्षन्, सुरजनसंघाः ॥

[कामदेवके युद्धमें विजयी बुद्धपर देवजनोंके समूहने कुसुम-वर्षा की]।

(३) **विद्युन्माला**—आठ अक्षरोंके पादकी, जो स भी गुरु (ऽऽऽऽऽऽऽऽ) होते हैं, जैसे—

विद्युन्मालालोलान्, भोगान्, मुक्त्वा मुक्तौ यत्नं कुर्यात् ।
ध्यानोत्पन्नं निःसामान्यं, सौख्यं भोक्तुं यद्याकांक्षेत् ॥

[बिजलीकी तरह चंचल भोगोंको छोड़कर मुक्तिमें यत्नशील होना चाहिये । यदि ध्यानसे उत्पन्न असाधारण सुखके भोगनेकी आकांक्षा करे ।]

अलंकार—

६. **अनुप्रास**—एकसमान वर्णोंका प्रयोग। जैसे ऊपरके श्लोकमें 'विजयिनि' और 'बुद्ध' में व, 'मनसिजयुद्धे'में ज और य, 'सुरजनसंघाः'में सु और स, 'मुक्त्वा' 'मुक्तौ'में मकार, 'माला' 'लोला'में लकार।

७. **प्रहेलिका**—विनोद गोष्ठीमें दूसरोंको मुग्ध करनेके लिये कही जानेवाली बुझौवल, जैसे—

काचिद् वसन्तसमये गत्वा पुष्पद्रुमावलिम्।
नामुञ्चत् निजनिःश्वासवायुं वारिजलोचना।

[किसी कमलनयनीने वसन्तके समय पुष्पों और वृक्षोंकी पाँतीमें जा, अपने श्वासके वायुको नहीं छोड़ा।

क्यों नहीं छोड़ा? उसकी सुगन्धको जान कहीं भँवरे न आ दौड़ें।]

षष्ठः पाठः

हा अनभ्रे वज्रपातः!

'यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति, यच्चेतसाऽपि न कृतं तदिहाभ्युपैति।' कम्पते करः, शिथिलं शरीरं, विदीर्यते हृदयं, न प्रचलति लेखनी, शीर्यते स्वान्तं प्रियवयस्यस्य गिरीशशर्मणो दिवंगमनवृत्तान्तं आवेदयितुम्। न मतिः प्रत्येति। येन सह अधुनैव अशितं, स्थितं, हसितं, विलसितं, स एकपद एव अन्तर्हितः स्याद्? वयं उद्भ्रान्ता इव प्रेक्षामहे। किं वयस्योऽस्मान् विहाय गतः? नहि एवं संभवति। हा, कास्मान् जहासि? कुत्र सर्पसि? किमितोपि स्वर्गे सुखसन्दोहो गरीयान्? हा हा स्वप्नोऽयं, उत माया मतिभ्रमो वास्माकम्? 'गिरीशशुक्लोऽस्मासु नास्ति न भविष्यति' इति किन्नु न प्रलापमात्रम्? नैवं स्यात्। स हि कायेनास्मान् परिहायापि स्मृत्या क्षणमपि न जातु हास्यति। न कदापि वयं तेन वंचिताः। यो हि हतोत्साहानपि अस्मान् स्वमंजुलमधुरगिरा

सुधाप्लावितान् सोत्साहान् करोति स्म, स किं अनिगद्यैव शाश्वतपदाय प्रस्थितो भविष्यति ? नैतत् संभाव्यते। सर्वं एतत् प्रलापमात्रं नः, न स कर्णे करोति अदः। दीर्घनिद्रं सुप्तः सः, दीर्घप्रस्थानं प्रस्थितश्च। वज्रहृदय, संस्तम्भय आत्मानं, न स पुनरावर्तते। हा संस्कृतसमाज, सर्वथा वंचितोऽसि। अहो न बध्नाति धैर्यं धिषणा। कमुपलभामहे ? कालः स्वैरी, न विमृशति कर्तव्याकर्तव्यम्। गतहायन एव हिन्दूविश्वविद्यालये न्यायशास्त्राध्यापकपदारोहणं तस्योपश्रुत्य समेत्यास्माभिर्निर्णीतं—अधुना न्यायकुसुमाञ्जलि-वात्स्यायनभाष्यप्रभृतीन् सर्वानपि दुरूहन्यायग्रन्थान् सरलसंस्कृतटीकया समलंकृत्य स्वल्पतरशुल्केनैव प्रकाशयिष्यामः, येन सर्वेषामपि तदध्यायिनां सौकर्यं सौलभ्यं च स्यात्।

पुरतश्च तदीयानां अनाथानां कुटुम्बानां दशां विलोक्य व्यथतेऽन्तरात्मा···। क एषां पालयिता ? हतभाग्या जननी, चतस्रो दीना दुहितरः, द्वौ असहायौ कुमारौ, विधवा च तपस्विनी पत्नी अहर्निशं विलपमाना। क एतेषां अश्रुस्तम्भनक्षमः ? को वा आधारो जीवितस्य ? हा कालहतक, पुष्पन् एव तरुः विहतस्त्वया। न्यायाचार्यो गिरीशशुक्लः किं न पुनः दृष्टिपथं आयास्यति ? ('सुप्रभातं', सन् १९२८ ई०, पृष्ठ २१८–२१९)

[हा, बिना मेघ के वज्रपात !

'जो सोचा था, वह यहाँसे बहुत दूर जा रहा, जो मनमें भी नहीं किया, वह यहाँ आ रहा है'। हाथ (लिखनेमें) काँपता है, शरीर शिथिल, हृदय विदीर्ण होता है, लेखनी नहीं चलती, अन्तर विशीर्ण होता है। प्रिय मित्र गिरीश शर्माके स्वर्ग-गमनके वृत्तान्तको बतलानेपर मन विश्वास नहीं करता। जिसके साथ अभी-अभी खाये, बैठे, हँसे, आनन्द किये; वह एकाएक अन्तर्धान हो जायेगा ? हम पागलकी तरह देख रहे हैं। क्या मित्र हमें छोड़कर चला गया ? यह नहीं हो सकता। हाँ, कहाँ हमें छोड़ रहे हो ? कहाँ जाते हो ? क्या यहाँसे भी स्वर्गमें बड़े सुख हैं ? हा हा ! यह स्वप्न है या माया अथवा हमारा मतिभ्रम ? 'गिरीश शुक्ल हमारे बीच नहीं हैं, न होंगे', यह क्या प्रलाप मात्र नहीं है ? ऐसा नहीं होगा। वे शरीरसे हमें छोड़ भी दें, (पर) स्मृतिमें क्षण भर भी नहीं छोड़ेंगे। हम कभी उनसे वंचित नहीं (रहेंगे)। जो हम हतोत्साहोंको भी अपनी कोमल मधुर वाणीसे

अमृतसिक्त और उत्साहवान् करते थे, वे क्या कुछ कहे बिना सनातनस्थानको प्रस्थान करेंगे ? यह संभव नहीं। यह सब हमारा प्रलाप मात्र है। वे इसे नहीं सुनते। दीर्घनिद्रामें वे सो गये, लंबे प्रस्थानपर चले गये। हे वज्र हृदय, अपनेको रोक, वे नहीं लौटेंगे। हा संस्कृतसमाज, तू सर्वथा वंचित है। अहो, बुद्धि धीरज नहीं बाँधती। किसको उपालम्भ दें ? काल स्वेच्छाचारी है, वह कर्तव्य, अकर्तव्यका विचार नहीं करता। पिछले वर्ष ही तो हिन्दू विश्वविद्यालयमें उनके अध्यापक-पदपर आरूढ़ होनेकी बात सुनकर एकत्रित हो हमने निश्चय किया था—अब न्यायकुसुमांजलि, वात्स्यायनभाष्य आदि सभी कठिन न्याय-ग्रंथोंको सरल टीकाके साथ कम दाममें प्रकाशित करेंगे, जिससे उनके सभी पढ़नेवालोंको सुकरता और सुलभता होगी।

सामने उनके अनाथ कुटुंबकी दशा देखकर दिल पीड़ित हो रहा है। कौन इनका पालन करेगा ? हतभागिनी है इनकी माता, चार दीन बेटियाँ, दो निराश्रय बच्चे, रातदिन रोती बेचारी विधवा पत्नी। कौन इनके आँसुओंके रोकनेमें सक्षम है ? कौन इनके जीवनका आधार होगा ? हा हत्यारे काल, फूल रहे तरुको तूने नष्ट कर दिया। न्यायाचार्य गिरीश शुक्लका दर्शन क्या फिर नहीं हो सकेगा ?]

अनभ्रं (बिना मेघ) **विदीर्यते** (फट रहा है) **आवेदयितुं** (निवेदन करते) **प्रत्येति** (विश्वास करती) **अशितं** (भोजन किया) **एकपदे** (एकाएक) **अन्तर्हितः** (अन्तर्धान) **क्व** (कहाँ) **जहासि** (छोड़ते हो) **सर्पसि** (जाते हो) **सन्दोहः** (राशि) **गरीयान्** (बड़ा) **अनिगद्य** (बिना कहे) **धिषणा** (बुद्धि) **विमृशति** (विचारता) **हायनं** (वर्ष) **दुरूहः** (कठिन) **अश्रुस्तंभनं** (आँसू रोकना)।

छन्द—

(४) इन्द्रवज्रा—हरेक पादमें ११ अक्षर, लक्षण—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गौ ॥

त (ऽऽ।) त (ऽऽ।), ज (।ऽ।) ग ग (ऽऽ)।

शिरीषमृद्वी गिरिषु प्रपेदे, यदा यदा दुःखशतानि सीता।
तदा तदाऽस्याः सदनेषु सौख्यलक्षाणि दध्यौ गलदश्रुरामः॥

[शिरीष पुष्प सी कोमल सीता जब जब सैकड़ों दुःखोंको प्राप्त हुई। तब तब आँसू बहाते रामने उसके घरके लाखों सुखोंका स्मरण किया।]

अर्थालङ्कार—

१. उपमा—जिसमें उपमान और उपमेयके समान धर्मोंकी तुलना की जाती है। जैसे—

धन्यासि वैदर्भि, गुणैरुदारैः, यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।
इतः स्तुतिः का खलु चंद्रिकायाः, यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति॥

[वैदर्भी (दमयन्ती) उदार गुणोंसे युक्त तू धन्य है, जिस तुझसे नैषध (नल) भी समाकृष्ट हुआ। इससे (अधिक) चाँदनीकी तारीफ क्या हो सकती है, जोकि वह समुद्रको भी चंचल कर देती है।]

यहाँ वैदर्भीकी चंद्रिकासे और नैषधकी समुद्रसे उपमा दी गई है।

२. स्मरण—प्रत्यक्ष किये पदार्थका उसके सदृश दूसरे पदार्थके देखनेसे स्मरण करने द्वारा; जैसा कि ऊपर 'शिरीषकुसुम०' में वनमें सीताके दुःखशतसे उसके घरके सुख-लक्षको रामका याद आना।

सप्तमः पाठः

मटचीहतेषु कुरुषु आटिक्या सह जायया उषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्य-ग्रामे प्रद्राणक उवास। स ह इभ्यं कुल्माषान् खादन्तं बिभिक्षे। तं ह उवाच—'न इतोऽन्ये विद्यन्ते, यच्च ये मे इमे उपनिहिताः' इति।

'एतेषां मे देहि' इति ह उवाच। तान् अस्मै प्रददौ। 'हन्त अनुपानं ?' इति। 'उच्छिष्टं वै मे पीतं स्याद्' इति ह उवाच।

'न स्विद् एतेऽपि उच्छिष्टाः' ? इति।

'न वा अजीविष्यं इमां न खादन्' इति ह उवाच 'कामं मे उदपानं' इति। (उषस्तिः) ह खादित्वा अतिशेषान् जायायै आजहार। साऽग्रे एव सुभिक्षा बभूव (इति), तान् प्रतिगृह्य निदधौ।

स ह प्रातः संजिहान उवाच—'यद् बत अन्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्रां, राजाऽसौ यक्षते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीते' इति।

तं जाया उवाच—'यद् पते, इमे एव कुल्माषाः' इति।

तान् खादित्वाऽमुं यज्ञं विततं एयाय। तत्र उद्गातॄन् आस्तावे स्तोष्यमाणान् उपोपविवेश। स ह प्रस्तोतारं उवाच—'प्रस्तोतः, या देवता प्रस्तावं अन्वायत्ता, तां चेद् अविद्वान् प्रस्तोष्यसि, मूर्धा ते विपतिष्यति।' इति।

एवमेव उद्गातारं उवाच—'उद्गातः, या देवता उद्गीथं अन्वायत्ता, तां चेद् अविद्वान् उद्गास्यसि, मूर्धा ते विपतिष्यति' इति।

एवमेव प्रतिहर्तारं उवाच—'प्रतिहर्तः, या देवता प्रतिहारं अन्वायत्ता, तां चेद् अविद्वान् प्रतिहरिष्यसि, मूर्धा ते विपतिष्यति' इति।

ते ह तूष्णीं आसाञ्चक्रिरे।

अथ ह एनं यजमान उवाच—'भगवन्तं वा अहं विविदिषाणि' ?

—'उषस्तिरस्मि चाक्रायणः' इति ह उवाच।

स ह उवाच—'भगवन्तं वा अहं एभिः सर्वैः आर्त्विज्यैः पर्येशिषम्। भगवतो वा अहं अवित्त्या अन्यान् आवृषि। भगवान् तु एव मे सर्वैः आर्त्विज्यैः' इति।

—'तथेति, अथ तर्हि एत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां, यावत् तु एभ्यो धनं दद्याः, तावन् मम दद्याः' इति।

—'तथा' इति ह यजमान उवाच।

—छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय १०।११

[ओला मारे कुरुदेशमें पत्नी आटिकीके साथ (ऋषि) उषस्ति चाक्रायण इभ्यों (आर्येतरों) के गाँव प्रद्राणकमें रहते थे। उन्होंने (एक दिन) कुलथी खाते एक इभ्यसे (उसे) माँगा। उनसे (वह) बोला—'इससे दूसरे मेरे पास नहीं हैं, जो कि मेरे पास रक्खे हैं।'

—'इन्हींको मुझे दें' इति वह बोले। उन्हें (उसने) इनको दिया, और फिर बोला)—'अच्छा पीछे (पीने) का पीना (जल) ?'

—'(वह) मेरा जूठा पीना होगा'–इति उन्होंने कहा।

—'क्या ये भी उच्छिष्ट नहीं ?' इति।

—'इनको न खाते मैं नहीं जीऊँगा ।'—इति बोले—'पानीका पान मेरे पास काफी है।' (उषस्ति) खाकर बाकीको पत्नीके लिये ले गये। वह पहिले ही खा चुकी थी, (इसलिये) उन्हें लेकर रख दिया।

वह प्रातः उठनेपर बोले—'अहो, यदि भोजन पाता, तो धनकी मात्रा पाता। वह राजा यज्ञ करेगा, वह मुझे दूसरे ऋत्विजोंके साथ वरण करता।' इति।

उनसे जायाने कहा—'पति, यही ये कुल्माष' इति।

उन्हें खाकर उस छाने हुए यज्ञमें वे गये। वहाँ सामगानमें साम गाते उद्गाताओंके पास बैठे। वे फिर (उनमेंसे एक) प्रस्तोतासे बोले—'हे प्रस्तोता, जो देवता प्रस्ताव (गेय साम) में आई है, उसे बिना जाने यदि प्रस्तवन करता है, तो तेरा शिर गिर जायेगा' इति।

ऐसे ही उद्गाताको (उषस्ति) ने कहा—'उद्गाता, जो देवता उद्गीथमें आई है, उसे बिना जाने यदि उद्गान करेगा, तो तेरा शिर गिर जायेगा' इति।

ऐसे ही प्रतिहर्ताको कहा—'प्रतिहर्ता, जो देवता प्रतिहारमें आई है, उसे बिना जाने यदि प्रतिहार करेगा, तो तेरा शिर गिर जायेगा।' इति।

4312 वे चुप बैठे रहे।

तब उनसे यजमान (राजा कौरव्य) ने कहा—'भगवान्को मैं जानना चाहता हूँ।'

—'उषस्ति हूँ चाक्रायण'—इति कहा।

उस (राजा) ने कहा—'भगवान्को मैंने इन सभी ऋत्विजोंके साथ ढूँढ़ा। भगवान्का पता न पा मैंने दूसरोंका वरण किया। भगवान् तो ही मेरे सभी ऋत्विजोंके साथ (ऋत्विज) हैं।' इति।

—'वैसा ही सही। तो फिर ये ही लोग स्तोत्र करें। जितना धन इन्हें देना, उतना मुझे देना' इति।

—'ठीक' यजमानने कहा।]

मटची (ओला, द्राविड शब्द) **कुरु** (मेरठके पासका प्रदेश) **आटिकी** (घुमक्कड़) **इभ्यः** (हाथीपाल, अन्-आर्य) **कुल्माषाः** (कुलथी, उबले उड़द) **उपनिहितः** (पास रक्खा) **ह** (जोर देनेके लिये निपात) **अनुपानं** (पीछे पीनेकी चीज) **उच्छिष्टं** (जूठा) **स्विद्** (प्रश्नार्थ निपात) **कामं** (यथेष्ट)

अतिशेषः (बचा) **सुभिक्षा** (खानेसे परितृप्त) **प्रतिगृह्य** (लेकर) **निदधौ** (रख दिया, लिट्) **संजिहान** (उठ बैठा) **बत** (वितर्कके लिये निपात) **लभेमहि** (हम पाते) **यक्ष्यते** (यज्ञ करेगा) **विततः** (फैला) **एयाय** (आया) **उद्गाता** (सामपाठी एक ऋत्विक्) **आस्तावः** (एक प्रकारका सामपाठ) **उपोपविवेश** (पास बैठा) **प्रस्तोता** (सामपाठी एक ऋत्विक्) **अन्वायत्ता** (संबद्ध) **अविद्वान्** (न जानता) **मूर्धा** (शिर) **विपतिष्यति** (गिर जायेगा) **इति** (उद्धरणके अन्तका सूचक) **उद्गीथः** (एक साम-पाठ) **प्रतिहर्ता** (एक सामपाठी ऋत्विक्) **प्रतिहार** (साम) **आसांचक्रिरे** (बैठे रहे, लिट्) **विविदिषाणि** (जानना चाहूँ) **भगवान्** (महापुरुष) **आर्त्विज्यः** (ऋत्विक्) **पर्येशिषं** (ढूँढ़ा) **अविस्त्या** (न पा) **आवृषि** (वरण किया) **समतिसृष्टाः** (नियुक्त) **दद्याः** (तू देवे) **तथा इति** (ठीक, वैसा ही)।

छन्द—

(५) **उपेन्द्रवज्रा**—ग्यारह अक्षरकी। लक्षण—**उपेन्द्रवज्रा ज-त-जाः ततो गौ**—ज (।ऽ।), त (ऽऽ।) ज (।ऽ।), दो ग (ऽऽ) यथा—

वसन्तलेखैकनिबन्धभावं परासु कान्तासु मनः कुतो नः।
प्रफुल्लमल्लीमदलंपटः किं, मधुव्रतः कांक्षति वल्लिमन्याम्॥

(दृष्टांतालंकार)

[वसन्तलेखामें एकमात्र बँधे भाववाला हमारा मन दूसरी कामिनियोंमें कैसे (जा सकता है)? फूली चमेलीके मदमें लुब्ध भ्रमर क्या दूसरी लताको चाहता है ?]

(६) **उपजाति**—ग्यारह अक्षर। लक्षण—इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राका सम्मिलित रूप, ।ऽ।ऽऽ।।ऽ।ऽऽ, ऽऽ।ऽऽ।।ऽ।ऽऽ

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां, भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द-विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्॥ (उत्प्रेक्षा)

[यही वह स्थल है, जहाँ तुझे ढूँढ़ते मुझे (तेरा) एक गिरा हुआ नूपुर मिला था। जो मानो तेरे चरणारविन्दके वियोगके दुःखसे मौन धारण किये था।]

अलंकार—

१० (३) **दृष्टान्त**—एकसे गुणवाले पदार्थकी समता दिखाना, जैसे ऊपर '**वसन्तलेखैक०**' में मनका मधुव्रतसे, वसन्तलेखाका प्रफुल्ल मल्लीसे, परकान्ताका अन्य वल्लीसे।

११ (४) उत्प्रेक्षा—उपमेयकी उपमानके साथ न वर्तमान गुणकी अत्यन्त समानता दिखलाना, जैसे 'सैषा स्थली०' में जड़ नूपुरमें मौनताका उत्प्रेक्षण, अथवा—

पल्लवितमिव करपल्लवाभ्यां प्रफुल्लितमिव नयनाभ्याम् ।
फलितमिव पीनपयोधराभ्यां आर्याया लावण्यम् ॥

[आर्याका लावण्य करपल्लवोंसे पल्लवित-सा, नयनोंसे फूला-सा, पीनपयोधरोंसे फला-सा है ।]

अष्टमः पाठः

अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विमोहिता ।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥ १ ॥
'अयि जीवितनाथ, जीवसी'त्यभिधायोत्थितया तया पुरः ।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम् ॥ ४ ॥
'उपमानमभूद् विलासिनां करणं यत् तव कान्तिमत्तया ।
तदिदं गतमीदृशीं दशां न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः ॥ ५ ॥
क्व नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृदः ।
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुतः ॥ ६ ॥
हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचः तदवैमि कैतवम् ।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनंगः कथमक्षता रतिः ॥ ९ ॥
नयनान्यरुणानि घूर्णयन् वचनानि स्खलयन् पदे पदे ।
असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानां अधुना विडंबना ॥ १२ ॥
हरितारुणचारुबन्धनः कलपुंस्कोकिलशब्दसूचितः ।
वद संप्रति कस्य बाणतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥ १४ ॥
मदनेन विना कृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे ।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण, त्वामनुयामि यद्यपि' ॥ २१ ॥

(शंकरने रतिको आत्महत्यासे रोकते कहा—)

तदिदं परिरक्ष शोभने भवितव्यप्रियसंगमं वपुः ।
रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन नियुज्यते नदी ॥ ४४ ॥

—कुमारसंभव (कालिदास) सर्ग ४ (वियोगिनी छन्द)

[तब भाग्य द्वारा नये वैधव्यकी असह्य वेदनाको पहुँचाई गई मूर्छिता मुग्धा बेबस कामकी बहू ॥ १ ॥

'हे प्राणनाथ, जीवित हो' यह कह सामने खड़ी हो केशोंको बिखेरे स्थलीको अपने दुःखमें एक करती विलाप करने लगी ॥ ४ ॥

'तेरे शरीरकी कमनीयताके कारण विलासियोंके लिये तू उपमान था, सो तू ऐसी दशाको प्राप्त है । मैं फट नहीं जाती, अहो स्त्रियाँ कठिन होती हैं ॥ ५ ॥

तेरे अधीन जीवनवाली मुझे छोड़ क्षणमें स्नेह तोड़नेवाले तुम सेतुके बंधनोंको तोड़ डालनेवाले जलसमूह द्वारा कमलिनीको छोड़ने जैसे भाग गये ॥ ६ ॥

मुझे प्रसन्न करनेके लिये 'तू मेरे हृदयमें बसती है ।' इस तेरे वचनको मैं वंचना समझती हूँ । यदि यह उपचार-वचन नहीं था, तो क्यों तू अ-शरीर है और रति अक्षतशरीरा ॥ ९ ॥

लाल नेत्रोंको घूर्णित करती कदम-कदमपर लड़खड़ाना कराती मदिराकी नशा तेरे बिना अब कामिनियोंके लिये विडंबना मात्र है ॥ १२ ॥

कोकिलके कोमल शब्दोंसे सूचित, हरे लाल सुंदर बंधनवाली आमकी नई मंजरी, बोल अब किसका बाण बनेगी ? ॥ १४ ॥

मदनके बिना रति क्षणमात्र जीवित रह सकी । यह ताना तो रहा ही, यद्यपि प्रिय, मैं तेरा अनुगमन करने जा रही हूँ' ॥ २१ ॥

सो सुन्दरि, भावी प्रियसंगमवाले इस शरीरको रक्षित रक्खो, सूर्य द्वारा पी ली गयी जलवाली नदी फिर जलौघसे संयुक्त होती है ॥ ४४ ॥]

मोहपरायणा (मुग्धा) **सती** (होती) **कामवधू** (रति) **विमोहिता** (मूर्छिता) **विधिः** (भाग्य, ब्रह्मा) **प्रतिपादयिष्यन्** (पहुँचानेवाला) **पुरः** (सामने) **विललाप** (विलाप किया, लिट्) **कुर्वती** (करती) **विकीर्णमूर्धजा** (बाल बिखराये) **समदुःखा** (एक दुःखसे दुखिया) **विलासी** (कामी) **करणं** (शरीर) **कान्तिमत्ता** (कमनीयता) **विदीर्ये** (विदीर्ण होती) **विनिकीर्य** (छोड़कर) **क्षणभिन्नसौहृदः** (क्षणमें सौहार्द तोड़ फेंकनेवाला) **सेतुबन्धनः**

(बाँधके बंधन) **नलिनी** (कमलिनी) **जलसंघातः** (बाढ़का पानी) **विद्रुतः** (पला गये) **अवैमि** (समझती हूँ) **अवोचः** (तुमने कहा था) **कैतवं** (वंचकता) **उपचारपदं** (दिखावेकी बात) **वारुणी** (मदिरा) **विडंबना** (बेकार) **कलः** (कोमल, सुन्दर) **पुंस्कोकिलः** (कोयल) **चूतः** (आम) **प्रसवः** (मंजरी, फूल) **वचनीयं** (तानाका पात्र) **रमणः** (प्रिय) **शोभना** (सुन्दरी) **वपुः** (शरीर) **तपात्यये** (ग्रीष्मके बीतने पर) **ओघः** (जलकी बाढ़) **नियुज्यते** (युक्त होती) ।

अलंकार—

१२ (५) अपह्नुति—प्रकरणगत को हटा दूसरेको साधना, जैसे—

नेदं नभोमंडलमम्बुराशिः, नैताश्च तारा नवफेनभंगाः ।
नायं शशी कुंडलितः फणींद्रः, नासौ कलंकः शयितो मुरारिः ॥

[यह आकाश नहीं समुद्र है, ये तारे नहीं नवीन फेनके टुकड़े हैं । यह चन्द्रमा नहीं नागराज कुण्डलित है, वह कलंक नहीं सोये हुये मुरारि (विष्णु) हैं] ।

१३ (६) पर्यायोक्ति—वाच्य-वाचक-भावको न दिखा दूसरे प्रकारसे कथन, जैसे—

अनेन पर्यासयताश्रुविन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु ।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनां आक्षेपसूत्रेण विनैव हाराः ॥

[इस (राजा) ने शत्रुओंकी स्त्रियोंके मोती जैसे बड़े बड़े अश्रुविन्दुओंको स्तनोंपर गिरवाते डालनेवाले सूत्रके विना ही हार डाल दिये ।]

यहाँ शत्रुओंके पराजय और उनकी स्त्रियोंके रोनेकी बातको दूसरी तरहसे कहा गया है ।

१४ (७) अनुमान—साध्य और साधनके वर्णन द्वारा अर्थ समझाना, यथा—

जानीमहेऽस्या हृदि सारसाद्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्रचन्द्रः ।
तत्कान्तिजालैः प्रसृतैः तदंगेष्वापांडुता कुड्मलिताक्षिपद्मे ॥

[हम जानते हैं, कि इस कमलाक्षीके (हृदयके) भीतर प्रियका मुखचन्द्र है, फैले हुये उसके कान्तिजालोंसे (कारण) उसके शरीरमें पीलापन (और) नयनकमल मुकुलित हैं ।]

दृश्य लक्षणको हेतु बना यहाँ अदृश्य हृदयस्थ चंद्रमुखका अनुमान किया गया है ।

नवमः पाठः

(ततः प्रविशति चूतांकुरं अवलोकयन्ती चेटी)

प्रथमा—

आताम्रहरितपांडुर जीवित सत्यं वसन्तमासयोः ।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमंगल त्वां प्रह्लादयामि ॥ २ ॥

द्वितीया—परभृतिके, किं एकाकिनी मंत्रयसे ?

प्रथमा—मधुकरिके, चूतकलिकां दृष्ट्वा उन्मत्ता भवति ।

द्वितीया—(सरोषं त्वरया उपगम्य) कथं उपस्थितो मधुमासः ।

प्रथमा—मधुकरिके, तव इदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम् ।

द्वितीया—सखि, अवलंबस्व मां यावद् अग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकालकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि ।

प्रथमा—यदि ममापि खलु अर्धं अर्चनफलस्य ।

द्वितीया—अकथितेऽपि एतद् संपद्यते, यत एकमेव नौ जीवितं द्विधा स्थितं शरीरं (सखीं अवलंब्य स्थिता चूतांकुरं गृह्णाति)। अये, अप्रतिवुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभंगसुरभिर्भवति (इति कपोतहस्तकं कृत्वा)।

त्वमसि मया चूतांकुर, दत्तः कामाय गृहीतधनुषे ।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पंचाभ्यधिकः शरो भव ॥

(इति चूतांकुरं क्षिपति)

(प्रविश्य अपटाक्षेपेण कुपितः)

कंचुकी—मा तावत् अनात्मज्ञे, देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वं आम्रकलिकाभंगं किमारभसे ?

उभे—(भीते) प्रसीदतु आर्यः, अगृहीतार्थे आवाम् ।

कंचुकी—न किल श्रुतं युवाभ्यां यद् वासन्तिकैः तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च । तथा हि—

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः,
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत् कोरकावस्थया ।

कंठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुते,
शंके संहरति स्मरोऽपि चकितः तूर्णार्धकृष्टं शरम् ॥ ४ ॥

उभे—नास्ति सन्देहः, महाप्रभावो राजर्षिः।

प्रथमा—आर्य, कति दिवसानि आवयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः ? इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तदागन्तुकतया अश्रुतपूर्व आवाभ्यां एष वृत्तान्तः।

कंचुकी—भवतु, न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्।

उभे—आर्य, कौतूहलं नौ। यदि अनेन जनेन श्रोतव्यं कथयतु। अयं किन्निमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः ?

कंचुकी—बहुलीभूतं एतत्, किं न कथ्यते। किमत्र भवत्योः कर्णपथं न आयातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्।

उभे—श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावद् अंगुलीयकदर्शनम्।

कंचुकी—(आत्मगतं) तेन अल्पं कथयितव्यम्। (प्रकाशं) यदैव खलु स्वांगुलीयकदर्शनाद् अनुस्मृतं देवेन 'अनूढपूर्वा मे तत्र भवती रहसि शकुन्तला मोहात् प्रत्यादिष्टे'ति, तदा प्रभृत्येव पश्चात्तापं उपगतो देवः। तथा हि—

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते,
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा,
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ॥ ५ ॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

अस्मात् प्रभवतो वैमनस्याद् उत्सवः प्रत्याख्यातः।

उभे—युज्यते।

[तब आमकी मंजरीको देखती परिचारिकायें प्रवेश करती हैं]

पहली—वसन्तमासोंके जीवन, ऋतुके मंगल कुछ लाल-हरे और पीले आमके मुकुल, तू दिखाई दे गया, मैं तुझे प्रसन्न करती हूँ ॥ २ ॥

दूसरी—कोइली, अकेले क्या सलाह कर रही है ?

पहली—भँवरी, कोइल आमकी मंजरी देख पागल हो जाती है।

दूसरी—(रोषके साथ जल्दी पास आकर) क्या मधु (चैत) मास आ गया ?

पहली—भँवरी, अब यह मदभरे गीतोंका समय है ।

दूसरी—सखी, जब तक पैरके पंजेपर खड़ी हो कामदेवकी पूजा करती हूँ, तब तक मुझे अवलम्ब दे ।

पहली—यदि मुझे भी देवपूजाका आधा फल मिले ।

दूसरी—बिना कहे भी यह होता है, क्योंकि हम दोनोंका एक ही प्राण है, शरीर (भर) दो प्रकारका है । (सखीका अवलंब ले खड़ी हो आमकी मंजरीको पकड़ती है) अरे, बिना खिला भी आमका मुकुल यहाँ वृन्तसे तोड़ने पर सुगंधित हो रहा है । (इति हाथ जोड़)—

'हे आम्रमुकुल, मैंने तुझे धनुर्धारी कामको प्रदान किया । तुम पथिकोंकी युवतियोंको लक्ष्य बनानेवाले (उनके) पाँचोंसे अधिक बाण बनो ।'

(इति आम्रमंजरीको छोड़ती है) ।

(परदा हटा । प्रवेश करके कुपित)

कंचुकी—मत ऐसा । मूढियो, महाराजने वसन्तोत्सव मनाना मना कर दिया है, क्यों तू आमकी मंजरीको तोड़ रही है ?

दोनों—(डरी हुई) क्षमा करें आर्य, हम दोनों (इस) बातसे अजान हैं ।

कंचुकी—क्या तुमने नहीं सुना, कि वसन्तवाले वृक्षों, उनपर रहनेवाले पक्षियोंने भी महाराजके हुकुमको मान लिया है ? जैसे कि,

देरसे निकली आमकी कलियाँ भी अपने केसरको नहीं धारण करती हैं । यद्यपि वह कुरवक (का फूल) कलीकी अवस्थाके साथ तैयार है । संदेह होता है, तूणीरसे आधे निकाले बाणको कामदेव रोक रहा है ॥ ४ ॥

दोनों—संदेह नहीं है, राजर्षि महाप्रभाववाले हैं ।

पहिली—आर्य, कोतवाल मित्रावसु द्वारा हम दोनोंको स्वामिनीके चरणोंमें भेजे कितने दिन हुये ही ? इस तरह महिला-उद्यानके पालनेका काम हमें सौंपा गया है । इसलिये (नई) आई हुई होनेके कारण हम दोनोंने यह वृत्तान्त नहीं सुना ।

कंचुकी—अच्छा, फिर ऐसा न करना ।

दोनों—आर्य, हमें कुतूहल है । यदि इस जनके सुनने लायक है, तो यह बतलायें, किस कारण स्वामीने वसन्तोत्सव मनाना निषिद्ध कर दिया ?

कंचुकी—बहुत फैल गया है यह (समाचार), क्यों न कह दिया जाये ? क्या आप दोनोंको शकुन्तलाको इन्कार करनेकी लोकप्रसिद्धि नहीं सुननेमें आई ?

दोनों—कोतवालके मुँहसे अँगूठीके दर्शन तक सुना ।

कंचुकी—(अपने आपसे) तो थोड़ा ही कहना है । (प्रकट) जब ही अपनी अँगूठीके दर्शनसे महाराजने स्मरण किया—'मैंने अकेलेमें ब्याही आप शकुन्तलाका मोहसे प्रत्याख्यान किया' तभीसे महाराजको पश्चात्ताप होने लगा । जैसे कि—

रमणीय (वस्तु) को नापसन्द करते हैं, पहिले की तरह प्रतिदिन प्रकृतियों द्वारा सेवित नहीं होते, शय्याके छोरपर करवट बदलते रात जगे ही बिता देते हैं, उदारताके कारण अन्तःपुरवालोंको उचित वचन (का उत्तर) देते हैं, तब गोत्र-स्खलित हो लज्जासे देर तक शरमा जाते हैं ॥ ५ ॥

इसी बलवती विमनस्कताके कारण उत्सवका निषेध किया ।

दोनों—ठीक है ।]

छन्द—

(७) **दोधक**—ग्यारह अक्षर । लक्षण-'**दोधकवृत्तमिदं भभभाद् गौ**' **भ (ऽ।।), भ (ऽ।।), भ (ऽ।।) ग दो (ऽऽ)**, जैसे—

या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः, सारतरागमनायतमानम् ।
तेन सहेह विभर्ति रहः स्त्री, सा रतरागमनाऽऽयतमानम् ॥

[दूसरी बहुओंसे आगमनपर बड़ा मान जिस सारवालीने नहीं पाया, उसके साथ यहाँ एकान्तमें वह विरत-प्रेम-मनवाली स्त्री बड़े मानको धारण करती है ।]

(८) **शालिनी**—ग्यारह अक्षर । लक्षण-'**शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धि-लोकैः**', **म (ऽऽऽ), त (ऽऽ।), त(ऽऽ ।), ग दो (ऽऽ)**, जैसे—

कृत्वा पुंवत् पातमुच्चैर्भृगुभ्यो, मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झरौघाः ।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतंतः स्मरार्तस्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र ॥

[यहाँ आकाशकी ओर उछलते जर्जर झरने चट्टानोंके सिर पर ऊँचे भृगुओंसे पात करके कामपीडित स्वर्गलोककी स्त्रियोंके शरीर (के सन्ताप) को बुझाते हैं]।

(उत्प्रेक्षा अलंकार)

दशमः पाठः

यो नैको नाप्यनेकः स्वपरहितमहासंपदाधारभूतो,
नैवाभावो न भावः खमिव समरसो दुर्विभाव्यस्वभावः ।
निर्लेपं निर्विकारं शिवमसमसमं व्यापिनं निष्प्रपंचं,
वन्दे प्रत्यात्मवेद्यं तमहमनुपमं धर्मकायं जिनानाम् ॥ १ ॥
लोकातीतामचिन्त्यां सुकृतशतफलामात्मनो यां विभूतिं,
पर्षन्मध्ये विचित्रां प्रथयति महतीं धीमतां प्रीतिहेतोः ।
बुद्धानां सर्वलोकप्रसृतमविरतोदारसद्धर्मघोषं,
वन्दे संभोगकायं तमहमिह महाधर्मराज्यप्रतिष्ठम् ॥ २ ॥
सत्त्वानां पाकहेतोः क्वचिदनल इवाभाति यो दीप्यमानः,
संबोधौ धर्मचक्रे क्वचिदपि च पुनर्दृश्यते यः प्रशान्तः ।
नैकाकारप्रवृत्तं त्रिभवभयहरं विश्वरूपैरुपायैः,
वन्दे निर्माणकायं दशदिगनुगतं तन्महार्थं मुनीनाम् ॥ ३ ॥
त्रैलोक्याचारमुक्तं गगनसमगतं सर्वभावस्वभावं,
शुद्धं शान्तं विविक्तं परमशिवमयं योगिनामेव गम्यम् ।
दुर्बोधं दुर्विचारं स्वपरहिततमं व्यापिनं निर्निमित्तं,
वन्दे कायं जिनानां सुखमसमसमं निर्विकल्पैकमूर्तिम् ॥ ४ ॥

त्रिकायस्तोत्र (बौद्ध)

[महायान बौद्ध धर्मका त्रिकाय सिद्धान्त एक मुख्य सिद्धान्त है, उन्हीं धर्म-, संभोग-, निर्माण-कायोंकी व्याख्या किसीने स्तोत्रके रूपमें की है ।) जो न एक है न अनेक, अपने और पराये हितकी महासंपदाका (जो) आधारभूत है, (जो) न भावरूप है न अभावरूप, (जो) आकाशकी तरह (तथा) विचारनेमें दुष्कर-स्वभाव है, (जो) निर्लेप, मंगलमय, अ-समान सम, व्यापी, निष्प्रपंच है, अपने भीतर जानने लायक बुद्धोंके उस अनुपम धर्म-शरीरको मैं वन्दता हूँ ॥ १ ॥

अलौकिक, अचिन्त्य, सौ पुण्योंके फलस्वरूप, जिस अपनी विचित्र महाविभूतिको बुद्धिमानोंकी प्रीतिके लिये (बुद्ध) प्रकट करते हैं, बुद्धोंके सर्वलोकमें फैले, निरंतर उदार धर्मघोषणावाले, महान् धर्मराज्यमें प्रतिष्ठित उस संभोगशरीरको यहाँ मैं वन्दता हूँ ॥ २ ॥

प्राणियोंका परिपाक करनेके लिये जो कहीं आगकी तरह दीप्यमान दीखता है, सम्बोधि और धर्मचक्रमें कहींपर फिर वह प्रशान्त दीखता है। नाना प्रकारके उपायोंसे तीन भवोंके भयको हरते, अनेक प्रकारसे (काममें) लगे, दसों दिशाओंमें उपस्थित मुनियों (बुद्धों) के उस महान् वस्तु निर्माण–शरीरको वंदता हूँ ॥ ३ ॥

तीन लोकके आचारसे मुक्त, आकाशइव व्याप्त, सारी वस्तुओंके स्वरूपी, शुद्ध, शान्त, एकाकी, परम कल्याणमय, योगियोंके ही प्राप्य, दुर्बोध, दुर्विचार, अपने परायेके परमहित, व्यापक, कारणहीन, अतुलनीय सुखवाले केवल निर्विकल्पाकार बुद्धोंके शरीरको वंदता हूँ ॥ ४ ॥]

खं इव (आकाशके समान, शून्य) **दुर्विभाव्यः** (भावना करनेमें कठिन) **असमसमं** (अतुलनीय) **निष्प्रपंचं** (संसार विना) **प्रत्यात्मं** (अपने भीतर, अपने ही अपने) **वेद्यं** (जाना जानेवाला) **जिनः** (बुद्ध) **विभूतिः** (वैभव) **पर्षत्** (सभा) **प्रथयति** (प्रकट करता है) **प्रसृतः** (फैला) **अविरमः** (न विराम लेनेवाला) **उदारः** (विशाल) **घोषः** (गर्जना) **पाकः** (परिपाक करना) **संबोधिः** (बोधगयामें परम ज्ञान पाना) **धर्मचक्रः** (सारनाथमें प्रथम उपदेश करना) **त्रिभवः** (देव, मानव और नरक-पशुके तीन योनिसमूह) **विश्वः** (सब) **अनुगतः** (मौजूद) **महार्थः** (महा पदार्थ) **विविक्तः** (अ–संग, एकाकी) **निर्विकल्पः** (संकल्प–विकल्परहित)।

छंद—

(९) **रथोद्धता**—ग्यारह अक्षर। लक्षण–'**रान्नराविह रथोद्धता लगौ**' र (ऽ।ऽ), न (।।।), र (ऽ।ऽ), ल (।), ग (ऽ), जैसे—

त्वं विनिर्जितमनोभवरूपः, सा च सुन्दर, भवत्यनुरक्ता ।
पंचभिर्युगपदेव शरैस्तां तापयत्यनुशयादिव कामः ॥

(प्रत्यनीक–अलंकार)

[तुम कामदेवके रूपको जीते हुये हो, हे सुन्दर ! और वह तुम्हारेमें अनुरक्ता है। ईर्ष्या करता जैसा काम एक ही बार पाँचों बाणोंसे उसे तपा रहा है।]

(१०) **वंशस्थ**—बारह अक्षर। लक्षण–'**जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ**' ज (।ऽ।), त (ऽऽ।), ज (।ऽ।), र (ऽ।ऽ), जैसे—

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्लमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥

(विरोध-अलंकार)

[इस स्वभावतः मनोहर शरीरको जो तपस्यासे क्षीण कराना चाहता है, निश्चय ही वह ऋषि नीलकमलके (कोमल) पत्र द्वारा शमीके (कठोर) वृक्षके काटनेका यत्न करता है ।]

अलंकार—

१५ (८) प्रत्यनीक—विरोधीका मुकाबिला करनेमें असमर्थ हो उसका तिरस्कार करना, जैसे कि ऊपर 'त्वं विनिर्जित०' में तरुणसे सौन्दर्यमें पराजित हो काम उसकी प्रिया पर प्रकुपित हो रहा है ।

१६ (९) एकावली—पहिले-पहिले के लिये पीछे-पीछे के विशेष्योंको रखना या निषेध करना, जैसे—

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजं, न पंकजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुंज यः कलं, न गुंजितं तन्न जहार यन्मनः ।

[वह जल नहीं जो कमलसे शोभित नहीं, वह कमल नहीं जिसमें भ्रमर लीन नहीं । वह भ्रमर नहीं जिसने मधुर गुञ्जन नहीं किया, वह गुञ्जन नहीं जिसने मनको नहीं हरा ।]

अथवा (उपजाति)—

पुराणि यस्यां सवरांगनानि, वरांगना रूपतिरस्कृतांग्यः ।
रूपं समुन्मीलितसद्विलासं, अस्त्रं विलासाः कुसुमायुधस्य ॥

[जिसमें नगर वरांगनाओं-सहित हैं, वरांगनायें रूपको तिरस्कृत किये अंगवाली हैं, रूप (उनके) अच्छे हाव-भाव प्रकट करनेवाले और हाव-भाव कामदेवके हथियार हैं ।]

एकादशः पाठः

प्र पर्वतानां उशती उपस्थाद् अश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्-छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥
'इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समारणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीः उपमुहूर्तं एवैः ।
प्र सिन्धुं अच्छा बृहती मनीषा वस्युः अह्वे कुशिकस्य सूनुः' ॥ ५ ॥
'इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहुः अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवो नयत् सविता सुपाणिः तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः' ॥ ६ ॥
'ओषु स्वसारः, कारवे शृणोत ययौ वो दूराद् अनसा रथेन ।
नि नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः' ॥ ६ ॥
'आ ते कारो, शृणवामा वचांसि ययाथ दूराद् अनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्य इव कन्या शश्वचैते' ॥ १० ॥
'यद् अंग, त्वा भरताः संतरेयुः गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षाद् अह प्रसवः सर्गतक्तः आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्' ॥ ११ ॥
अतारिषुः भरता गव्यवः समभक्तविप्रः सुमतिं नदीनां ।
प्र पिन्वध्वं इषयन्तीः सुराधा आवक्षणाः पृणध्वं यात शीभं ॥ १२ ॥

—ऋग्, ३. ३३ (विश्वामित्र १२०० ई. पू.)

भरतोंके राजा सुदासके लोग एक समय शत्रुओंके दबावमें पड़े ब्यास और सतलुजके संगमके पास पहुँचकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। परंपरा कहती है कि सुदासके पुरोहित ऋषि विश्वामित्रने स्तुति करके नदियोंको सुपारा बना दिया। वही यहाँ वर्णित हुआ है।

[मुक्त घोड़ियोंकी तरह हास करती, चाटनेवाली शुभ्र गो-माताओंकी तरह पर्वतोंकी गोदसे ब्यास और सतलुज (मिलनकी) कामनावाली पानीके साथ दौड़ रही हैं ॥ १ ॥

'(हे दोनों नदियो,) इन्द्रसे प्रेरित आज्ञा चाहती रथियोंकी तरह अच्छा समुद्रको जाती हो, हे शुभ्रे, तरंगोंसे भरी-पूरी साथ-साथ एक-दूसरेके पास जाती हो ॥ २ ॥

हे जलवतियो, मेरे सौम्य वचन (के सुनने) के लिये क्षणभर गमनसे

विरम जाओ, मैं कुशिक-पुत्र (विश्वामित्र) अच्छी बड़ी अभिलाषासे याचक (सा) नदियोंका आवाहन करता हूँ' ॥ ५ ॥

(नदियाँ—) 'वज्रबाहु इन्द्रने वृत्रको मारा, हमारे लिये नदियोंकी परिधिको खोदा, सुहस्त सविता देव (हमें) ले जा रहा है, उसकी आज्ञामें विशाल हुई हम जा रही हैं' ॥ ६ ॥

'बहिनों, कविकी जरा सुनो, शकटरथ द्वारा मैं दूरसे आया हूँ। जाओ, सुपारा हो जाओ (अपने) पानीके साथ नदियो, धुरेसे नीचे हो जाओ' ॥ ९ ॥

(नदियाँ—) 'स्तोता, तेरी बात हम सुन रही हैं, तू शकटरथसे दूरसे आया, जैसे पिलानेवाली स्त्री, जैसे आलिंगन करनेवाली कन्या झुकती है, वैसे तेरे लिये हम नवती हैं' ॥ १० ॥

'जो कि इन्द्रसे प्रेरित गो-अभिलाषी भरत-समूह तुम्हें पार करेंगे, (उन्हें) तुम्हारी आज्ञा प्राप्त हो गई, (इसलिये) मैं तुम्हें यज्ञ-योग्य सुमति वरण करता हूँ' ॥ ११ ॥

गो-अभिलाषी भरत पार हो गये, समान भक्त विप्र नदियोंकी स्तुति (करते हैं), तुम (भरतो) धनवती, संपत्ति लानेवाली (नदियोंको) तृप्त और सन्तुष्ट करते शीघ्र जाओ]।

उशती (चाह करती) **उपस्थं** (गोद, पास) **विषिते** (मुक्त) **शुभ्रा** (स्वच्छ) **रिहाणा** (लेहन करती) **पयः** (जल) **इषितः** (प्रेरित) **प्रसवः** (आज्ञा) **समारणं** (साथ) **ऊर्मिः** (तरंग) **पिन्वमाना** (भरी-भरी) **ऋतावरीः** (पानीवाली) **एवः** (वेग, गमन) **सिन्धुः** (नदी) **मनीषा** (इच्छा) **अवस्युः** (चाहक) **अह्वे** (पुकारता हूँ) **अरदद्** (खनन क्रिया) **अपाहन्** (हनन क्रिया) **परिधिः** (सीमा) **सविता** (उत्पादक) **उर्वी** (विस्तृत) **ओषु** (ठहरो) **स्वसा** (बहिन) **कारुः** (कवि, स्तोता) **अनस्** (गाड़ी, शकट) **अक्षा** (गाड़ीका धुरा) **स्रोत्यः** (प्रवाह, जल) **निनंसै** (नौती हैं) **पीप्याना** (पिला रही) **योषा** (स्त्री) **मर्यः** (पुरुष) **शश्वचैते** (आलिंगन करती) **अंग** (संबोधन चिह्न) **गव्यन्** (गाय पानेके इच्छुक) **ग्रामः** (समूह) **इषितः** (चाह किये) **जूतः** (प्रेरित) **अर्षः** (इच्छासे) **आवृणे** (वरण करता हूँ) **पिन्वध्वं** (तृप्त करो) **इषयन्ती** (अन्नवाली)

सुराधा (सुंदर धनवाली) आवक्षणा (लानेवाली) पृणध्वं (तुष्ट करो) शीभं (शीघ्र)।

अलंकार—

१७. (१०) **दीपक**—उपमान और उपमेयके क्रिया–गुण–जाति आदि धर्मोंका एक ही समय ग्रहण कर सारे वाक्यका दीपन (प्रकाशन)। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुतको एकधर्मसे सम्बद्ध करते हैं, जैसे (शिशुपाल-वध)—

बलावलेपाद् अधुनापि पूर्ववत्, प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला, पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥

[अब भी बलके दर्पसे पहिलेकी तरह विजयेच्छुक (शिशुपाल) द्वारा जगत् पीडित हो रहा है। सती स्त्री और निश्चल प्रजा अन्य जन्ममें भी पुरुषके पास जाती है।]

यहाँ प्रस्तुत (प्रकरणगत) प्रकृतिका अप्रस्तुत सतीका अपने पतिके अनुगमन करनेकी एक क्रियासे सम्बन्ध जोड़ा गया है।

१८. (११) **निदर्शना**—जहाँ अनहोनी बातसे सादृश्य स्थापित किया जाय, जैसे 'इदं किलाव्याजमनोहरं०' में शकुन्तलाके तपसाधनको कमलपत्रकी धारसे शमीवृक्षके काटनेका प्रयास बतलाया गया।

१९. (१२) **पर्याय**—एक बातका क्रमसे अनेकमें होना या क्रिया करना, जैसे—

बिम्बौष्ठ एव रागस्ते तन्वि, पूर्वमदृश्यत।
अधुना हृदयेऽप्येष मृगशावाक्षि, लक्ष्यते ॥

[हे छरहरी, पहिले तेरे बिम्बाधरमें ही राग (लाल रंग) दिखाई दिया था, मृगशिशु-सी आँखवाली, अब यह (तेरे) हृदयमें भी दीखता है।]

एक ही रागका ओष्ठ, हृदय जैसे अनेक स्थानोंमें क्रमशः होना यहाँ वर्णित है।

द्वादशः पाठः

वपुषा परमेण भूधराणामथ संभाव्यपराक्रमं विभेदे।
मृगमाशु विलोकयाञ्चकार स्थिरदंष्ट्रोग्रमुखं महेन्द्रसूनुः ॥ १ ॥
स्फुटबद्धसटोन्नतिः स दूरादभिधावन् अवधीरितान्यकृत्यः।
जयमिच्छति तस्य जातशंके मनसीमं मुहुराददे वितर्कम् ॥ २ ॥
घनपोत्रविदीर्णशालमूलो निबिडस्कन्धनिकाषरुग्णवप्रः।
अयमेकचरोऽभिवर्तते मां समरायेव समाजुहूषमाणः ॥ ३ ॥
इह वीतभयास्तपोनुभावाज् जहति व्यालमृगाः परेषु वृत्तिम्।
मयि तां सुतरामयं विधत्ते विकृतिः किं नु भवेदियं नु माया ॥ ४ ॥
अथवैष कृतज्ञयेव पूर्वं भृशमासेवितया रुषा न मुक्तः।
अवधूय विरोधिनीः किमारान्मृगजातीरभियाति मां जवेन ॥ ५ ॥
न मृगः खलु कोऽप्ययं जिघांसुः स्खलति ह्यत्र तथा भृशं मनो मे।
विमलं कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा ॥ ६ ॥

—किरातार्जुनीय (भारवि) सर्ग १२

[तब महेन्द्रपुत्र अर्जुनने महाकाय शरीरसे पहाड़ोंके फोड़नेमें सक्षम पराक्रमवाले दृढ़-दाढ-विकट-मुखवाले जानवरको देखा ॥ १ ॥

प्रकट बद्ध केसरवाले दूसरे कृत्योंका तिरस्कार करते दौड़ते हुए, उस (वराह) ने जयेच्छु शंकोत्पन्न उस (अर्जुन) के मनमें क्षणभरके लिये यह वितर्क डाल दिया ॥ २ ॥

घने थूथुनसे शाल वृक्षके मूलको विदारित किये, दृढ कन्धेके घर्षणसे शैल तोड़े, यह एकाकी विचरण करनेवाला, युद्धके लिये ललकारनेकी इच्छासे युक्त मेरे पास आ रहा है ॥ ३ ॥

यहाँ तपके प्रतापसे भय त्यागे हिंसक मृग (भी) दूसरोंमें (हिंसा-) वृत्तिको त्यागते हैं, (पर) मेरे भीतर यह उसे बहुत डाल रहा है, क्या यह विकार है या कि माया ? ॥ ४ ॥

अथवा पूर्व (जन्म) के बहुत अभ्यस्त क्रोधसे न मुक्त, कृतका ज्ञाता हो, विरोधी मृगजातियोंको तिरस्कृत कर वेगसे क्यों मेरे पास आ रहा है ? ॥ ५ ॥

यह मृग नहीं, कोई हिंसा-इच्छुक है, क्योंकि मेरा मन वैसा क्षुब्ध हो रहा है, विमल चित्त कलुष बनकर रिपु है या हितैषी, इसे बतलाता है ॥ ६ ॥]

वपुः (शरीर) **भूधरः** (पहाड़) **संभाव्यः** (सक्षम) **विभेदः** (तोड़ना, फोड़ना) **आशु** (शीघ्र) **विलोकयांचकार** (देखा, लिट्) **महेन्द्रसूनुः** (इन्द्र-पुत्र, अर्जुन) **सटा** (केसर) **अवधीरितः** (तिरस्कृत) **जातशंकम्** (शंका जिसमें उत्पन्न है) **मुहुः** (क्षण भर) **पोत्रं** (थूथुन, मुखाग्र) **निकाष** (घर्षण) **रुग्णः** (खण्डित) **वप्रः** (पर्वतपाद) **समाजुहूषमाणः** (ललकारनेकी इच्छा-वाला) **वीतभयः** (गत-भय, निर्भय) **अनुभावः** (प्रताप) **जहति** (छोड़ देते हैं) **व्यालः** (हिंसक प्राणी) **विकृतिः** (मनका विकार) **कृतज्ञा** (कृत जाननेवाली) **भृशं** (बारबार) **अवधूय** (छोड़कर) **आरात्** (नजदीक) **अभियाति** (संमुख आता है) **जवः** (वेग) **जिघांसुः** (हिंसाका इच्छुक) **कलुषीभवत्** (कलुषित होता)।

छन्द—

(११) **तोटक**—बारह अक्षर । लक्षण—'**इह तोटकमम्बुधिसैः प्रमितं**', स (।।ऽ), स (।।ऽ), स (।।ऽ), स (।।ऽ), यथा—

अमुना यमुनाजलकेलिकृता, सहसा तरसा परिरभ्य धृता।
हरिणा हरिणाकुलनेत्रवती, न ययौ नवयौवनभारवती ॥

(यमक-अलंकार)

[जमुना जलमें केलि करनेवाले उस हरि (कृष्ण) ने एकाएक जल्दीसे आलिंगित कर हरिन जैसे व्याकुल नेत्रोंवाली, नये यौवनके भारवाली (तरुणी) पकड़ ली, (जो वहाँसे नहीं) गई] ।

(१२) **द्रुतविलंबित**—बारह अक्षर । लक्षण—'**द्रुतबिलंबितमाह नभौ भरौ**', न (।।।), भ (ऽ।।), भ (ऽ।।), र (ऽ।ऽ), जैसे—

इह पुरोऽनिलकंपितविग्रहा मिलति का न वनस्पतिना लता ।
स्मरसि किं सखि कान्तरतोत्सवं, नहि घनागमरीतिरुदाहृता ॥

(अपह्नुति)

['यहां पूर्वमें हवासे कंपित शरीरवाली कौन-सी वनस्पति नहीं मिलन करती ?' 'सखि, क्या कान्तके प्रेमोत्सवको याद करती है' ? 'नहीं वर्षाकी रीति बतलाई' ।]

अलंकार—

२० (१३) समासोक्ति—जहां विशेषणके लिंग और कार्यकी समानतासे प्रस्तुतसे अप्रस्तुत (प्रकरणसे भिन्न) बातका परिचय कराया जाय, जैसे—

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः, कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः ।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥

[पवनसे आहत लययुक्त किसलयरूपी हाथके साथ, कानोंको सुखद भ्रमर-गीतोंवाली, कुसुमसे कोमल दन्त-कान्तिवाली उपवनोंकी लतायें शोभित हो रही हैं ।]

यहाँ वनलता जो प्रस्तुत वस्तु है, उससे अप्रस्तुत नर्तकी का रूप दिखलाया गया है ।

त्रयोदशः पाठः

महान्ति पापान्यभिभूय यस्माद् अजातशत्रुर्गुणवान् बभूव ।
उपेत्य सद्भिस्सह संप्रयोगमतो निषेव्या गुणवन्त एव ॥ १ ॥
अहो विभूतिर्गुणविस्तराणां गुणाऽधिकैर्यत् सह संप्रयुज्य ।
गुणैरभूतैर्विगुणोऽभ्युपैति गुणप्रसिद्धिं गुणभूषणेषु ॥ २ ॥
अभूतसंभावनया तया तु हतोऽप्यसौ कालवशेन भूयः ।
तुषारदग्धद्रुमवद् वसन्ते गुणप्रभावोज्ज्वलतामुपेति ॥ ३ ॥

तद् यथाऽनुश्रूयते, राजा किल अजातशत्रुर्वनद्विरदवरोपग्रहणनिमित्तं स्वनगराद् अभिनिःसृत्य ददर्श महान्तं कुञ्जरवरं वनाभिमुखमभिद्रवन्तं, दृष्ट्वा च पुनस्तमेव हस्तिनं अनुजगाम, स च दन्ती—

स्मृत्वा सरांसि कमलोत्पलमण्डितानि
कादम्बपक्षपवनोद्धतशीकराणि ।
उद्भिन्नकोमलकशेरुलतावनानि
वेगात् महीधरवनाभिमुखो जगाम ॥ ६ ॥

उत्कण्ठितः किसलयोज्ज्वलपादपानां
वैदूर्यनीलहरितोद्गतशाद्वलानाम् ।
उद्धूतशीकरकरो द्विरदो वनानां
तूर्णं ययौ पवननुन्न इवाम्बुगर्भः ॥ ७ ॥

अथ स महीपतिः पवनपटुजवातिशयतुरगवराधिरूढो दूराद् अपसृतबलसहायो न चिरेण खदिरबदरधवबिल्वेङ्गुदिकंटकद्रुमवनगहनां शरवणकाशकुशवंशजालजटिलदुस्संचारप्रदेशां जीर्णशीर्णविक्षिप्तास्थिकङ्कालसकलधवलभूमिभागां प्रतिभयगंभीरपत्रप्रपातस्थलस्थाणुवल्मीकदुर्निर्गमप्रवेशां अटवीं प्रपेदे । स च गजाधिपतिः तस्य राज्ञो दर्शनं उपजगाम। राजाऽसौ विहतपराक्रमावशो ग्रीष्मोष्मक्लमशिथिलाकुलप्रयत्नः भूरेणुधूसराग्रकेशः सम्मोहं समुपजगाम साध्वसेन । तस्मिन् खड्गविषाणकोटिकषणयुते सिंहव्याघ्रमहिषव्यालावकीर्णे वने एकाकी स भूपः रविकरज्वालाप्रतापातुरः तृष्णार्तः पदवीं ददर्श सहसा शैलेन्द्रसम्प्रापिकाम् । तां च मुहूर्तं अनुगच्छन् ददर्श दूरादेव नीलविपुलस्निग्धपलाशनिचितविटपतरुवरगहनं अचलसानुप्रदेशम् । दृष्ट्वा प्रोवाच—

अस्मिन् नूनं प्रदेशे नवनलिनिवनच्छन्नतोयं सरो वा
धारा शैलोदराद् वा पतति मणिदलस्वच्छशोभा जलस्य ।
वृक्षाः तत्सन्निकर्षाद् उपचितविपुलश्यामशाखाप्रशाखाः
येनैते शैलमेतद् जगदिव सकलं सज्जनात् शोभयन्ति ॥ ८ ॥
एते वृद्धिमुपागताः खलु परां आसाद्य तोयाशयं ।
सन्मित्रं समुपेत्य (सज्जन) इव प्रध्वस्यमानारयः ॥ ९ ॥

"तद् इतो गच्छामी"ति संप्रधार्य उपेत्य च तं प्रदेशं समन्ततो विलोकयन् ददर्श अन्यतमस्मिन् तरुवनगहनविवरे विपुलशिलातलाभोगनिषण्णं कृताहारप्रयोजनं उपशमनिभृतेन्द्रियप्रचारसौम्यवपुषं शाक्यभिक्षुम् । दृष्ट्वा समाश्वासप्राप्तः प्रह्लादित इव विश्रान्त इव च वाजिनं एकान्ते निबध्य तं भिक्षुं अब्रवीत्—'भदन्त, सलिलाशयप्रदेशं उपदेष्टुं अर्हसी'ति । तेन च उपदिष्टः, अथ स राजा तमुपदिष्टं सलिलाशयं

उपगम्य विगतपिपासक्लमः प्रस्वेदवारिकणार्द्रललसल्ललाटभित्तिः पीत्वाऽपि वारि कमलोत्पलनालशीतं न धृतिं जगाम।

—स्पोस्. खङ्. (तिब्बत) विहारमें संरक्षित तालपत्र पोथीसे।

अभिभूय (हराकर) **गुणवान्** (गुणी, धर्मात्मा) **संप्रयोगः** (संयोग, संगति) **निषेव्यः** (सेवा योग्य) **विभूति** (ऋद्धि, वैभव) **गुणाब्धिकः** (गुणसागर) **अभूतः** (अविद्यमान) **तुषारः** (हिम, बर्फ) **दग्धः** (सूखा) **अनुश्रूयते** (सुना जाता है) **द्विरदः** (हाथी) **उपग्रहणं** (पकड़ना) **अभिनिःसृत्य** (निकलकर) **कुञ्जरः** (हाथी) **अभिद्रवन्** (दौड़ता) **दन्ती** (हाथी) **पादपः** (वृक्ष) **वैदूर्यः** (हीरा) **उद्गतः** (उगा) **शाद्वलः** (हरियाली) **शीकरः** (फुहार) **नुन्नः** (प्रेरित) **अम्बुगर्भः** (बादल) **जवः** (वेग) **तुरगः** (घोड़ा) **बलः** (सेना) **सहायः** (मित्र) **खदिरः** (खैर) **बदरः** (बेर) **बिल्वः** (बेल) **कंटकद्रुमः** (बबूल) **शरवणः** (सरपतका वन) **दुस्संचारः** (चलना कठिन जहाँ) **स्थाणुः** (ठूंठ) **वल्मीकः** (दीमककी ढेरी) **दुर्निर्गमं** (निकलनेमें मुश्किल) **अटवी** (जंगल) **प्रपेदे** (पहुँचा, लिट्) **अवशः** (बेबस) **साध्वसं** (घबड़ाहट) **खड्गविषाणः** (गैंडा) **तृष्णा** (प्यास) **पदवी** (पगडंडी) **अचलः** (पहाड़) **सन्निकर्षः** (समीपता) **संप्रधार्य** (मनमें कर) **समन्ततः** (चारों ओर) **आभोगः** (फण, उच्चस्थान) **उपशमः** (संयम) **निभृतः** (शान्त) **प्रचारः** (चंचलता) **शाक्यभिक्षुः** (बौद्ध भिक्षु) **वाजी** (घोड़ा) **भदन्त** (स्वामी, पूज्य) **सलिलाशयः** (जलाशय) **क्लमः** (थकावट) **प्रस्वेदः** (पसीना) **वारि** (जल) **आर्द्र** (भींगा) **ललाटभित्तिः** (ललाटतल) **उत्पलं** (कमल) **धृतिः** (धैर्य) **जगाम** (प्राप्त हुआ, लिट्)।

[क्योंकि सत्पुरुषोंके साथको पा, बड़े-बड़े पापोंको परास्त कर (राजा) अजातशत्रु गुणवान् (भला) हो गया, अतः गुणवान् ही सेवनीय हैं ॥ १ ॥

अहो बहुत गुणवालोंका वैभव, जो कि गुणसागरोंसे मिलने द्वारा गुणोंसे रहित (पुरुष) गुणभूषणोंमें गुण (होने) की प्रसिद्धि प्राप्त करता है ॥ २ ॥

वह (निर्गुणी) उस न होनेकी संभावनाका मारा भी कालवश, वसन्तमें हिम से दग्ध वृक्षकी भाँति पुनः गुणके प्रभावकी उज्ज्वलताको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जैसे कि सुना जाता है। राजा अजातशत्रुने वनहस्तीके पकड़नेके लिये अपने

नगरसे निकलकर एक बड़े हाथीको वनकी ओर दौड़ते देखा। देखकर फिर उसी हाथीके पीछे चला। और वह हाथी—

कमल-उत्पलसे मंडित हंसोंके पंखोंके पवनसे उछाली फुहारोंवाले, फूटी कोमल कसेरू लतावाले सरोंको यादकर पर्वतकी ओर गया॥ ६॥

कोमल पत्रोंसे सुन्दर वृक्षोंवाले, वैदूर्यसे नील हरे उगे तृणोंवाले, वनोंकी (ओर जानेके) लिये उत्कंठित पवनताडित मेघकी तरह फुहार छोड़ता गज जल्दी-जल्दी गया॥ ७॥

तब वह राजा पवनकेसे तेज़ वेगवाले घोड़ेपर चढ़ सेना और साथियोंके बिना जल्दी ही खैर, बेर, धव, इङ्गुदी, बबूलके वृक्षोंसे गहन, मूँज, काश, कुश, बाँसोंके जालसे जटिल, संचारमें कठिन प्रदेशवाली, जीर्ण-शीर्ण फेंकी हड्डीके कङ्कालसे सारी धवल हो रही भूमिवाली, भयसे गंभीर, गिरे पत्रोंके स्थल, ठूंठ, बामीके कारण घुसने-निकलनेमें कठिन, अटवी (जंगल) में पहुँचा। वह गजराज राजाको दिखाई दिया। वह राजा पराक्रमहीन, बेबस, ग्रीष्मकी धूपसे शिथिल और व्याकुल-प्रयत्न, मिट्टीकी धूलसे केशके छोरतक धूसरित सहसा मोहको प्राप्त हो गया। गैंडेकी सींगकी नोकसे खोदे, सिंह, बाघ, भैंसे, हिंसक जन्तुओंसे भरे उस वनमें, सूर्यकी किरणोंकी ज्वाला—तेज-घामसे व्याकुल, प्यासे अकेले राजाने एकाएक पहाड़के सानुकी ओर जानेवाली पगडंडी देखी। मुहूर्त भर उसका अनुसरण करते दूरसे ही नीले विपुल चिकने पत्रयुक्त वृक्ष-तरुसे गहन पर्वत-पाद प्रदेशको देखकर उसने (अपनेसे) कहा—

इस प्रदेशमें निश्चय नवीन कमलिनी-वनसे ढँका (कोई) जल या सरोवर है या शैलके उदरसे मणिके पत्र जैसी स्वच्छ शोभावाली जलकी धारा गिरती है। उसकी समीपताके कारण वृक्ष विपुल, श्याम, शाखा-प्रशाखाओंसे युक्त हैं, जिसके कारण इस पर्वतको ये सज्जनसे जगतकी तरह शोभित करते हैं॥ ८॥

ये जलाशयको प्राप्त कर (ही) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हैं, जैसे अच्छे मित्रको पाकर सज्जन शत्रुओंको ध्वस्त करते हैं॥ ९॥

'सो यहाँसे चलूँ' यह सोच वहाँ पहुँच उस प्रदेशको चारों तरफ देखते वृक्षवनसे गहन एक गुहाके पास विपुल शिलातलके सिरपर बैठे, इन्द्रिय-चंचलताके

शान्त होनेके कारण सौम्य शरीरवाले, भोजनसे निवृत्त हुए बौद्ध भिक्षुको देखा। देखकर राजा धैर्य-प्राप्त, आनन्दित-सा, विश्रामप्राप्त-सा, घोड़ेको एक ओर बाँध उस भिक्षुसे बोला—'भदन्त, सरोवरके स्थानको बतलाइये।' उन्होंने बतलाया। तब राजाने बतलाये जलाशयके पास जा थकावटरहित हो पसीनेके जलसे भीगी ललाट-भित्तिवाला हो, कमल-उत्पलकी नालोंसे शीतलित जलको पीकर भी सान्त्वना नहीं पाई।]

छन्द—

(१३) भुजंगप्रयात—बारह अक्षरके पादवाला। लक्षण—'भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः', य (ISS), य (ISS), य (ISS), य (ISS), जैसे—

पुरः साधुवद् भाति मिथ्याविनीतः, परोक्षे करोत्यर्थनाशं हताशः।
भुजंगप्रयातोपमं यस्य चित्तं, त्यजेत् तादृशं दुश्चरित्रं कुमित्रम्। (उपमा)

[झूठी (नम्रतावाला), सामने साधु-सा दीखता है, परोक्ष में हताश हो अनर्थ करता है, साँपके जाने जैसा जिसका (कुटिल) चित्त है, वैसे दुश्चरित्र कुमित्रको त्यागना चाहिये]।

(१४) प्रहर्षिणी—तेरह अक्षर। लक्षण—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीति', म (SSS), न (III), ज (ISI), र (SIS), ग (S), यथा—

उत्तुङ्गस्तनकलशद्वयोन्नताङ्गी, लोलाक्षी विपुलनितम्बशालिनी च।
बिम्बोष्ठी नखरमुष्टिमेयमध्या, सा नारी भवति मनःप्रहर्षिणीति॥
(उपमा)

[दो ऊँचे स्तनकलशोंसे झुके शरीरवाली, चंचल-नेत्रा, बड़े नितंबवाली, बिंब जैसे लाल ओठोंवाली, नखयुक्त मुट्ठीसे नापनेभरकी कमरवाली, वह स्त्री मन हरषानेवाली होती है]।

चतुर्दशः पाठः

निःश्वासधूमं सह रत्नभाभिर् भित्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम् ।
नीलोत्पलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श ॥ १ ॥
(उपजाति, उत्प्रेक्षा)

गुर्वीरजस्रं दृषदः समन्ताद् उपर्युपर्यम्बुमुचां वितानैः ।
विन्ध्यायमानं दिवसस्य भर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भिः ॥ २ ॥
(उत्प्रेक्षा)

सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम् ।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम् ॥ ४ ॥
(उत्प्रेक्षा)

क्वचिज्जलापायविपांडुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि ।
अभ्राणि बिभ्राणमुमांगसंगविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम् ॥ ५ ॥
(उपमा)

बिलम्बिनीलोत्पलकर्णपूरा कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरीः ।
नवोलपालंकृतसैकताभाः शुचीरपः शैवलिनीर्दधानम् ॥ ८ ॥
(उपमा)

राजीवराजीवशलोलभृंगं मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम् ।
कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥ ६ ॥
(पुनरुक्तवद् , या यमक, उत्प्रेक्षा)

अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधाने ।
भृंगावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ॥१२॥
(पुनरुक्तवद् , उत्प्रेक्षा)

फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात् कार्शानवं धाम पतंगकान्तैः ।
शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकाम् ॥१६॥
(वृत्यनुप्रास)

दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद् विस्मयमाततान ।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥१७॥

(काव्यलिंग)—शिशुपालवध (माघ)

[साँसके धूयेंसे युक्त, रत्न-किरणोंवाले नागोंकी भूमिको फाड़कर उठे नीले पत्थरोंमें गुँथी विचित्र धातुओंवाले रैवतक पहाड़को उसने देखा ॥ १ ॥

बड़ी शिलाओंके चारों ओर और ऊपर-ऊपर निरन्तर नवते मेघोंके चँदवोंसे दिनपतिके मार्गको फिर रोकनेके लिये मानो वह विन्ध्यपर्वत-सा हो रहा है। (ऐसे रवैतकको) ॥ २ ॥

हजारों सिरों और पैरोंसे आकाश तक व्याप्त हो खड़े (रैवतकको) (मानो जो) सूर्य-चन्द्रमा-नेत्रवाला अच्छा (विराट्) विष्णु हो ॥ ४ ॥

कहीं जलके निकाससे पीले, धुली चादर-समान छविवाले बादलोंको धारण किये, उमाके अंगके संगसे बँटी भस्मवाले शंकरकी तरह (रेवतकको देखा) ॥५॥

लटकते नीलकमलके कर्णभूषणवाले, कपोलतल-सा लोध्र-जैसा श्वेत, नव-खस-तृणसे अलंकृत बालुकावाले सेवारवाले शुद्ध जलको धारण किये (रैवतकको) ॥८॥

कमलपाँतियोंके वश चंचल भ्रमरवाले, वृक्षोंकी पाँतियोंसे धूपको हरनेवाले, कमनीय अलकान्तोंवाली देवोंकी ललनाओंको वहन करते राक्षसोंसे अ-क्षुब्ध (रैवतक) को ॥ ९ ॥

समीपस्थ उग्र तापवाले सूर्यको धारण किये भी कमलधारक जिसके तटपर रस पिये कमल नवाये भ्रमर-पाँती मस्त नहीं थी ॥ १२ ॥

सूर्यकिरणोंके संपर्कसे सूर्यकान्त (मणियों) द्वारा आग्नेय तापको पैदा करते पात्रके गुणसे आक्रान्तके गुणकी अधिक संक्रान्ति (प्राप्त होने) को जो प्रतिपादन करता (है, उसे) ॥ १६ ॥

देखे हुये होनेपर भी उस पर्वतने क्षणभरके लिये अपूर्व-सा बन कृष्णको विस्मित किया। क्षण-क्षण जो नवीनता प्राप्त करता है, वही (तो) रमणीयताका स्वरूप है ॥ १७ ॥]

गुर्वी (भारी) **अजस्रं** (निरन्तर, सदा) **दृषद्** (पत्थर) **अम्बुमुक्** (बादल) **वितानं** (चँदवा) **विन्ध्यायमानं** (विन्ध्य जैसा बनता) **भर्ता**

(स्वामी) उन्नमद् (झुकता) वितिष्ठमानं (खड़ा) विलोचनं (नेत्र) उष्णरश्मिः (सूर्य) निशाकरः (चाँद) हिरण्यगर्भः (विष्णु) धौतं (धुला) उत्तरीयं (उपरना, चादर) अभ्रं (बादल) स्मरारिः (कामरिपु, शंकर) कर्णपूरः (कानका भूषण) लोध्रः (एक वृक्ष, लोध) गौरी (गौरी) उलपः (खस-तृण) सैकतं (बालुका) शैवलिनी (सेवारवाली) राजीवं (कमल) राजिः (पाँती) लोलः (चंचल) मुष्णन् (हरण करता) ततिः (पाँती) कान्तः (कमनीय) रक्षः (राक्षस) अक्षोभितः (न क्षुब्ध किया गया) उद्वहन् (वहन करता) न अखिद्यत (न खिन्न हुई) आसन्नं (समीपस्थ) उदग्रः (तीव्र) अरविन्द-धानं (कमल-धारक) भृंगावलिः (भ्रमर-पंक्ति) निपीतरसा (पी लिया रस जिसने) नमत् (झुकता) तामरसं (कमल) मत्ता (मस्त) फलत् (प्रतिफलित होता) उष्णांशुकरः (सूर्य) अभिमर्शः (स्पर्श) कार्शानवं (कृशानुका, अग्निका) धाम (तेज) पतंगः (सूर्य) शशंस (प्रतिपादित किया, लिट्) संक्रान्तिः (संक्रमण, स्थानान्तरीकरण) आक्रान्तः (प्राप्त) गुणातिरेकः (गुणकी बहुतायत) अपूर्ववद् (पहिले न देखा-सा) विस्मयः (आश्चर्य) आततान (ताना, किया) नवता (नवीनता) उपैति (प्राप्त होता है)।

छन्द—

(१५) वसन्ततिलका—१४ अक्षर। लक्षण-'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः', त (SSI) भ (SII), ज (ISI), ज (ISI), गग (SS), जैसे—

व्याजस्तुतिः तव पयोद मयोदितेयं,
यज्जीवनाय जगतस्तव जीवनानि ।
स्तोत्रं तु ते महदिदं घन धर्मराज-
साहाय्यमर्जयसि यत् पथिकान् निहत्य ॥

[हे मेघ, तेरी व्याज-स्तुति मैंने यह कही, कि जगतको जिलानेके लिये तेरा जीवन है। हे बादल, तेरी भारी तारीफ तो यह है, कि (वियोगी) पथिकों-को मारकर तू यमराजकी सहायता करता है।]

अलंकार—

२१ (१४) व्याजस्तुति—स्तुति द्वारा निन्दा या निन्दा द्वारा स्तुति जब

की जाये, जैसे ऊपर 'व्याजस्तुतिः०' में पथिकहनन क्रिया द्वारा जगत्-जीवन घनकी की गई तारीफ।

२२ (१५) परिसंख्या—प्रश्न या न प्रश्न द्वारा एकका निषेधकर दूसरेकी व्यवस्था करना,

किं भूषणं? सुदृढमत्र यशो न रत्नं
किं कार्य?मार्यचरितं सुकृतं न दोषः।
किं चक्षुरप्रतिहतं ? धिषणा न नेत्रं,
जानाति कस्त्वदपरः सदसद्विवेकम् ॥

[भूषण क्या है ? यहाँ सुस्थिर यश, न कि रत्न। क्या करणीय है ? आर्यों द्वारा आचरित पुण्य, न कि दोष। अप्रतिहत नेत्र कौन है ? बुद्धि, न कि आँखें; तुझे छोड़ कौन दूसरा सत्त्य-असत्त्यके विवेकको जानता है ?]

पंचदशः पाठः

(नेपथ्ये)

एतु एतु भवान्।

कंचुकी—(कर्णं दत्वा) अये, इत एव अभिवर्तते देवः। स्वकर्म अनुष्ठीयताम्।

उभे—तथा (इति निष्क्रान्ते)।

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतिहारी च)

कंचुकी—(राजानं अवलोक्य) अहो सर्वासु अवस्थासु रमणीयत्वं आकृतिविशेषाणाम्। एवं उत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः।

राजा—(ध्यानमन्दं परिक्रम्य)।

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम् ॥ ७ ॥

विदूषकः—(अपवार्य) लंघित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति।

कंचुकी—(उपगम्य) जयतु जयतु देवः । महाराज, प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः । यथाकामं अध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः ।

राजा—वेत्रवति, मद्वचनाद् अमात्यं आर्यपिशुनं ब्रूहि—'चिरप्रबोधात् न सम्भावितं अस्माभिरद्य धर्मासनं अध्यासितुम् । यत् प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यं आर्येण तत् पत्रमारोप्य दीयतां' इति ।

प्रतीहारी—यद् देव आज्ञापयति (इति निष्क्रान्ता) ।

राजा—वातायन, त्वमपि स्वनियोगं अशून्यं कुरु ।

कंचुकी—यद् आज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः) ।

विदूषकः—कृतं भवता निमक्षिकं । साम्प्रतं शिशिरातपरमणीयेऽस्मिन् प्रमदवनोद्देश आत्मानं रमयिष्यसि ।

राजा—वयस्य, रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते, तद् अव्यभिचारि वचः । कुतः —

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना, मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता, धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ ८ ॥

(द्रुतविलंबित, स्मरण, अनुप्रास) ।

विदूषकः—तिष्ठ तावत्, अनेन दंडकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयिष्यामि (इति दंडकाष्ठं उद्यम्य चूतांकुरं पातयितुं इच्छति) ।

राजा—(सस्मितं) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम् । सखे, क्व उपविष्टः प्रियायाः किञ्चिद् अनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि ।

विदूषकः—ननु आसन्नपरिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टा 'माधवीमंडप इमां वेलां अतिवाहयिष्ये । तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्र भवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिं आनय' इति ।

राजा—ईदृशं हृदयविनोदस्थानं, तत् तस्य एव मार्गं आदेशय ।

विदूषकः—इत इतो भवान् ।

(उभौ परिक्रामतः)

विदूषकः—एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेन इव नौ प्रतीच्छति । तत् प्रविश्य निषीदतु भवान् ।

(उभौ प्रवेशं कृत्वा उपविष्टौ)

[(पर्दे के भीतर)

आइये आइये आप।

कंचुकी—(कान देकर) अरे, इधर ही आ रहे हैं देव। अपना काम करो।

दोनों—अच्छा (इति निकल गईं)।

(तब शोकके अनुरूप वेषवाला राजा, विदूषक और प्रतिहारी प्रवेश करते हैं।)

कंचुकी—(राजाको देखकर) अहो, विशेष (सुन्दर) आकृतिवालोंकी सभी अवस्थाओंमें रमणीयता, इस प्रकार शोकाकुल भी देव प्रियदर्शन हैं।

राजा—(चिन्तनके कारण मन्द-मंन्द घूमकर)।

पहिले (तो) हरिणाक्षी प्रिया द्वारा जगाये जाते भी सोया यह अभागा हृदय अब पश्चात्ताप के दुःख के लिये ही जगा ॥ ७ ॥

विदूषक—(अलग-सा) फिर इस पर शकुन्तला की व्याधि चढ़ी। न जाने कैसे चिकित्सा करनी होगी ?

कंचुकी—(पास आ) जय जय देव! महाराज, देख लिये ललना-उद्यानके स्थान। स्वच्छन्दतापूर्वक विनोदस्थानोंमें महाराज बैठें।

राजा—बेंतवाली, मेरे वचनसे मंत्री आर्यपिशुनको बोल—'देर तक जागनेसे आज न्यायासनपर बैठना हमारे लिये सम्भव नहीं हुआ। आर्य (पिशुन) ने जो नागरिकोंके वाद देखे हैं, उन्हें पत्रमें लिखकर दीजिये'।

प्रतिहारी—जो आज्ञा देते हैं देव (इति निकल गई)।

राजा—वातायन, तू भी अपने कर्तव्यको छोड़ मत रख।

कंचुकी—जो आज्ञा देते हैं देव, (इति चला गया)।

विदूषक—आपने बेमक्खीका बना दिया (यह स्थान)। अब शिशिरकी धूपसे रमणीय इस ललना-उद्यानके स्थानमें अपने रमण करोगे।

राजा—दोस्त, 'छिद्रपर अनर्थ गिरनेवाले होते हैं' यह जो कहा जाता है, वह वचन गलत नहीं है, क्योंकि—

मुनि-कन्याके प्रेमकी स्मृतिको रोकनेवाले अन्धकारसे यह मेरा मन मुक्त है।

(जिसपर) हे मित्र, प्रहार करनेवाले कामदेवने धनुषपर आम (मञ्जरी) का बाण भी लगा लिया ॥ ८ ॥

विदूषक—ठहर, इस डण्डेसे कामदेवकी व्याधि (इस मंजरी) को नाश करता हूँ । (इति डंडा उठाकर आम्रमंजरीको मार गिराना चाहता है) ।

राजा—(मुस्कराते) रहने दो, देख लिया ब्रह्मतेज । मित्र, कहाँ बैठे प्रियाकी कुछ अनुकरण करनेवाली लताओंमें मनको लगाऊँ ?

विदूषक—समीपवर्तिनी परिचारिका चतुरिकाको आपने आदेश दिया था—'माधवी (चमेली) मण्डपमें इस समयको बिताऊँगा—वहाँ अपने हाथसे लिखी, चित्रफलकपर उतारी शकुन्तलाकी छविको ले आ' इति ।

राजा—ऐसा विनोदका स्थान (है, तो) उसीके मार्गको दिखलाओ ।

विदूषक—इधर इधर आप (आइये) ।

(दोनों परिक्रमा करते हैं ।)

विदूषक—यह मणिशिलाकी पटियावाला माधवी-मण्डप (पुष्पके) उपहारसे रमणीय होनेके कारण निःसंशय स्वागतके साथ हम दोनोंको स्वीकार कर रहा है । सो प्रवेश कर आप बैठें ।

(दोनों प्रविष्ट हो बैठे ।)]

छन्द—

(१६) **मालिनी**—पन्द्रह अक्षर । लक्षण—'**ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः**', न (|||), न (|||), म (SSS), य (|SS), य (|SS), जैसे—

सह कुमुदकदम्बैः काममुल्लासयन्तः,
सह घनतिमिरौघैर्धैर्यमुत्सारयन्तः ।
सह सरसिजषंडैः स्वान्तमामीलयन्तः,
प्रतिदिशममृतांशोरंशवः सञ्चरन्ति ॥ (सहोक्ति)

[कुमुदके समूहोंके साथ कामको उत्तेजित करते, बादलके अन्धकारप्राचुर्यके साथ धीरताको भगाते, कमलवनोंके साथ मनको संकुचित कराते, चन्द्रमाकी किरणें हरेक दिशामें फैल रही हैं ॥]

अलङ्कार—

२३ (१६) **अतिशयोक्ति**—सीमा पार करनेवाली उक्ति, जिसमें आरोप निश्चित होता है ।

यदि स्यान् मंडले सक्तं इन्दोरिन्दीवरद्वयम् ।
तदोपमीयते तस्या वदनं चारु लोचनम् ॥

[यदि चन्द्रमण्डल में दो कमल लगा होता, तब इसका सुन्दर आँखों वाला मुख (चन्द्रमासे) उपमित किया जाता ॥]

अथवा—

स्तनयोर्जघनस्यापि मध्ये मध्यं प्रिये तव ।
अस्ति नास्तीति सन्देहो न मेऽद्यापि निवर्तते ॥

[हे प्रिये, स्तन और जानुके बीच कटि तेरी, है या नहीं है, यह सन्देह आज भी मेरा नहीं हटता ।]

२४ (१७) सहोक्ति—साथ होनेकी बात कहना, जैसे कि 'सह कुमुद०' में कुमुद आदिका उल्लसित होना काम आदिके साथ ।

षोडशः पाठः

अथ अन्यस्मिन् अहनि उत्थाय प्रातरेव स्नात्वा धृतधवलदुकूलवासाः गृहीताक्षमालः प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्रपदानि च बहुशः समावर्त्य देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरां विधाय पूजां, परमया भक्त्या भगवन्तं आशुशुक्षणिं हुत्वा, दत्वा द्युम्नं द्विजेभ्यः, प्रदक्षिणीकृत्य नैचिकीं, शुक्लांगरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासाः, शिखासक्तसिद्धार्थकः, पितुः कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षादिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमंगलः, दत्ताशीर्वादो बान्धववृद्धाभिः, अभिनन्दितः परिजन-जरतीभिः, वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञातो गुरुभिः, आघ्रातः शिरसि कुलवृद्धैः, वर्धितगमनोत्साहः शकुनैः, शोभने मुहूर्त्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिरस्थंडिलस्थापितं पूर्णकलशं उदीक्षमाणः, प्रणम्य कुलदेवताभ्यः, कुसुमफलपाणिभिः अप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः, प्रथमचलितदक्षिणचरणः (वाणः) प्रीतिकूटाद् निरगात ।

प्रथमे अहनि घर्मकालकष्टं निरुदकं निष्पत्रपादपविषमं पथिकजननमस्क्रियमाणं कात्यायनीप्रतियातनं शुष्कमपि पल्लवितमिव शनैः शनैः

चण्डिकाकाननं अतिक्रम्य मल्लकूटनामानं ग्रामं अगात्। तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना सम्पादितसपर्यः सुखं अवसत्। अथ अपरेद्युः उत्तीर्य भगवतीं भागीरथीं यष्टिग्रहकनाम्नि वनग्रामके निशां अनयत्। अन्यस्मिन् दिवसे स्कन्धावारं उपमणितारं अन्वजिरवति कृतसन्निवेशं आससाद, अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य।

निवर्तितस्नानाशनव्यतिकरो विश्रान्तश्च मेखलकेन सह याममात्रावशेषे दिवसे भुक्तवति भूभुजि प्रख्यातानां क्षितिभुजां बहून् शिविरसन्निवेशान् वीक्षमाणः शनैः शनैः वारणेन्द्रैः श्यामायमानं, तुरंगैस्तरंगायमाणं, श्वेतायमानैरातपत्रखण्डैः श्वेतद्वीपायमानं, शत्रुमहासामन्तैः समन्ताद् आसेव्यमानं राजद्वारं अगमत्।

मेखलकस्तु दूरादेव द्वारपाललोकेन प्रत्यभिज्ञायमानः 'तिष्ठतु, तावत् क्षणमात्रं अत्रैव पुण्यभागी'ति अभिधाय अप्रतिहतः पुरः प्राविशत्।

अथ मुहूर्तादेव प्रांशुना कर्णिकारगौरेण वीध्रकंचुकच्छन्नवपुषा मौलिना पांडुरं उष्णीषं उद्वहता वामेन करकिसलयेन कलयता कृपाणं इतरेण वेत्रयष्टिं धारयता पुरुषेण अनुगम्यमानो निर्गत्य अवोचत्—'एष खलु देवस्य पारियात्रनामा दौवारिकः'। दौवारिकः समुपसृत्य कृतप्रणामो मधुरया गिरा सविनयं अभाषत—'आगच्छत, प्रविशत दर्शनाय। कृतप्रसादो देवः'। वाणस्तु 'धन्योऽस्मि, यद् एवं अनुग्राह्यं मां देवो मन्यते' इत्युक्त्वा तेन उपदिश्यमानमार्गः प्राविशद् अभ्यन्तरम।

—हर्षचरित (वाणभट्ट), उच्छ्वास २

[तब दूसरे दिन उठकर प्रातः ही स्नान करके श्वेत रेशमी वस्त्र धारण किये रुद्राक्षमाला लिये, यात्रासम्बन्धी वैदिक सूक्तों और मंत्रोंको अनेक वार पाठ करके देवोंके देव शंकरकी दुग्धस्नान-पूर्वक पूजा करके, परम भक्तिसहित भगवान् अग्निका हवन करके, ब्राह्मणोंको दान दे, गौकी प्रदक्षिणा करके, सफेद अङ्गलेपनवाला, सफेद मालावाला, सफेद वस्त्रवाला, शिखामें लगे पीले सरसोंवाला, माताकी तरह स्नेहार्द्र सफेद वस्त्रधारिणी साक्षात् भगवती महागौरीसी पिताकी सबसे छोटी बहिन मालतीद्वारा मंगलाचार किया हुआ, परिवारकी वृद्धाओं द्वारा आशीर्वाद पाया हुआ, सेविका-बूढ़ियों द्वारा अभिनन्दित, पूजितचरण गुरुजनों द्वारा अनुज्ञाप्राप्त, कुलवृद्धों द्वारा सिर सूँघा हुआ, सगुनोंसे गमन-उत्साह बढ़ाया हुआ, शुभ मुहूर्तमें हरे

गोवरसे लीपे आँगनके चौतरेपर स्थापित पूर्ण कलशको देखता, कुलदेवताओंको प्रणामकर, हाथमें फूल लिये 'अप्रतिरथ' (मंत्र) को जपते अपने ब्राह्मणोंसे अनुगमन किया जाता, पहिले दाहिने पैरको उठाकर चला हुआ (अपने ग्राम) प्रीतिकूटसे (वाणभट्ट) निकला ।

पहिले दिन गरमीके कालके कष्टवाले, जलहीन विना पत्र-वृक्ष होनेसे कठिन, पथिकों द्वारा नमस्कार की जाती दुर्गाकी प्रतिमावाले, शुष्क होनेपर भी पल्लव युक्त से, धीरे-धीरे चंडिकावनको पारकर मल्लकूट नामक गाँवमें पहुँचा। वहाँ एक हृदयसे मित्र तथा प्रिय भाई जगपतिकी सेवा पा सुखसे निवास किया । फिर अगले दिन भागीरथी गंगाको पार हो जठियाँव नामक वनग्राममें रात बिताई । दूसरे दिन अजिरवती नदीके पास लगी उपमणितार सैनिक छावनीमें पहुँच गया और राज-भवनसे नातिदूर ठहर गया । स्नान-भोजन क्रिया समाप्तकर विश्रामकर (हर्षदूत) मेखलकके साथ पहर भर दिन बच रहनेपर राजाके भोजन कर लेनेके वाद प्रसिद्ध राजाओंके वहुतसे डेरोंको देखते, गजराजों द्वारा श्याम बने, तुरंगों द्वारा तरंगित हो रहे, सफेद धूपनिवारक छत्तों द्वारा श्वेतद्वीपसे बन रहे, शत्रुमहासामन्तों द्वारा चारों ओरसे सेवित होते राजद्वारपर धीरे-धीरे गया ।

दूरसे ही द्वारपाल लोगों द्वारा पहिचाने गये मेखलकने 'पुण्यात्मा (वाण) क्षणभर यहीं ठहरें' कह विना वाधाके सामने प्रवेश किया ।

तब जरा देर ही में लम्बे कर्णिकारसे गोरे, सुन्दर कंचुकसे ढँके शरीरवाले, शिरपर पीली पगड़ी बाँधे, बायें करकिसलयसे खड्ग पकड़े, दूसरेमें बेंतकी छड़ी धरे, एक पुरुषको पीछे लिये निकलकर (मेखलकने) कहा—'यह महाराजका पारियात्र नामक ड्योढीदार है' । ड्योढीदारने भी पास आ प्रणाम कर मधुर वाणीसे विनयपूर्वक कहा—'आइये, दर्शनके लिये प्रवेश कीजिये । महाराजने मेहरवानी की है ।' वाणने—'मैं धन्य हूँ, जो कि महाराज मुझे ऐसा अनुग्रह-योग्य समझते हैं' यह कहकर उसके द्वारा रास्ता वतलाया जाता भीतर प्रवेश किया ।]

छन्द—

(१७०) **शिखरिणी**—सत्रह अक्षर । लक्षण–'**रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी**' ॥य (ISS), म (SSS), न (III), स (IIS), भ (SII), ल (I), ग (S) ।

इदं वक्त्रं साक्षाद् विरहितकलंकः शशिधरः,
सुधाधाराधारश्चिरपरिणतं बिम्बमधरः।
इमे नेत्रे रात्रिन्दिनमधिकशोभे कुवलये,
तनुर्लावण्यानां जलधिरवगाहे सुखतरः॥ (रूपक)

[यह मुख साक्षात् कलंकरहित चन्द्रमा है, अमृतका आधार ओठ (ललाईमें) चिरपक्क बिंबफल है। ये दोनों नेत्र रात-दिन अधिक शोभायमान दो कमल हैं, शरीर, अवगाहनमें अधिक सुखकारी लुनाइयोंका सागर है॥]

(१८) हरिणी—सत्रह अक्षर। लक्षण-रसयुगहयैर्न्सौम्रौस्लौ गो यदा हरिणी तदा। न (।।।), स (।।ऽ), म (ऽऽऽ), र (ऽ।ऽ), स (।।ऽ), ल (।), ग (ऽ), जैसे—

कुवलयदलश्यामा पीनोन्नतस्तनशालिनी,
चकितहरिणीनेत्रच्छायामलिम्लुचलोचना।
मनसिजधनुर्ज्यानिर्घोषैरिव श्रुतिपेशलैः,
मनसि ललना लीलालापैः करोति ममोत्सवम्॥ (उपमा)

[कमलके पत्र-सी श्यामा, स्थूल-ऊँचे स्तनोंवाली, चकित हरिनीकी नेत्र-शोभाके चोरक नेत्रोंवाली, कामदेवके धनुषकी ज्याके शब्दों-सी कर्णसुखद सुन्दर आलापोंसे ललना मेरे मनको आह्लादित करती है।]

अलंकार—

२५. (१८) **रूपक**—सादृश्यसे विषय और विषयीका भेद करके कथन और न वैसी वस्तुमें वैसा होनेका निश्चय करना। जैसे—'इदं वक्त्रं०' में मुख आदिका चन्द्रमा आदिसे अत्यन्त समानताका वर्णन।

२६. (१६) **अर्थान्तर**—समानधर्मता या विभिन्नधर्मता द्वारा किसी वस्तुको प्रस्तुत करके उसके साधनमें समर्थ दूसरी वस्तुका कहना, जैसे—

भगवन्तौ जगन्नेत्रे सूर्याचन्द्रमसावपि।
पश्य गच्छत एवास्तं नियतिः केन लंघ्यते।

[जगत्के नेत्र भगवान् सूर्य और चन्द्रमा भी, देख, अस्त होते ही हैं, भवितव्यताको कौन लाँघ सकता है ?]

सप्तदशः पाठः

ततः गंभीरं च प्रसन्नं च त्रासजननं च रमणीयं च कौतुकजननं पुण्यं च चक्रवर्तिनं हर्षं अद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च अनुगृहीत इव निगृहीत इव साभिलाष इव तृप्त इव मुखेन मुंचन् आनन्दवाष्पवारिविन्दून् दूरादेव विस्मयस्मेरः समचिन्तयत्—'सोऽयं सुजन्मा सुगृहीतनामा तेजसां राशिः चतुरुदधिकेदारकुटुंबी देवः परमेश्वरो हर्षः। एतेन खलु राजन्वती पृथ्वी। अस्य त्यागस्य अर्थिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, सत्त्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापाराः, कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला न पर्याप्तो विषयः। अस्मिंश्च (शासति) राजनि यतीनां योगपट्टकाः पुस्तकर्मणां पार्थिव-विग्रहाः षट्पदानां दानग्रहणकलहाः, वृत्तानां पादच्छेदा' इति समुपसृत्य च उपवीती (वाणः) स्वस्तिशब्दं अकरोत्।

राजा तु दृष्ट्वा तं गंभीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागं अपृच्छत्—'एष स वाणः'।

'यथा आज्ञापयति देवः, सोऽयम्' इति विज्ञापितो दौवारिकेण।

'न तावद् एनं अकृतप्रसादः पश्यामि' इति तिर्यग् चक्षुषः परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालवराजसूनोः अकथयत्—'महान् अयं भुजंग' इति।

मुहूर्तं इव तूष्णीं स्थित्वा वाणो व्यज्ञापयत्—'देव, अविज्ञाततत्त्व इव अश्रद्दधान इव अविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्माद् एवं आज्ञापयसि? स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य प्रवादाः। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवित-व्यम्। नार्हसि मां अन्यथा सम्भावयितुम्। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोम-पायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्। यथाकालं उपनयनादयः कृताः संस्काराः। सम्यक् पठितः सांगो वेदः। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि। दारपरिग्रहाद् अभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजंगता? लोकद्वयविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवं अशून्यं आसीत्। सर्वथा कालेन मां ज्ञास्यति स्वामी स्वयमेव।' इत्यभिधाय (वाणः) तूष्णीं अभूत्।

भूपतिरपि 'एवं अस्माभिः श्रुतं' इत्यभिधाय तूष्णीमेव अभवत्, संभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनं अन्वग्रहीत्। केवलं अमृतवृष्टिभिः स्नपयन् इव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेण अन्तर्गतां प्रीतिं अकथयत्।

अस्ताभिलाषिणि च लंबमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यंतरं प्राविशत् (राजा)। वाणोऽपि निर्गत्य निर्वाति वासरे संध्यासीधुपानपात्रे मज्जति पातंगे मंडले चैत्यप्रणतिपरेषु पाराशरिषु हवींषि वषट्कुर्वति यायजूकजने विकीर्यमाणे जगति प्रदीपप्रकरे निवासस्थानं अगात्।

अकरोच्च (वाणः) चेतसि—'अतिदक्षिणः खलु देवो हर्षः, यद्, एवं अनेकबालचापलोचितकौलीनकोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। यदि अहं अक्षिगतः स्यां, न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति तु मां गुणवन्तम्। उपदिशन्ति विनयं वाचा विनाऽपि भर्तव्यानां स्वामिनः। अपि च, धिङ् मां स्वदोषान्धमानसं अनादरपीडितं एवं अतिगुणवति राजनि अन्यथा अन्यथा च चिन्तयन्तम्। सर्वथा करोमि तथा, यथा यथावस्थितं मां जानाति अयं कालेन' इति अवधार्य चापरेद्युः निष्क्रम्य कटकात् सुहृदां बान्धवानां च भवनेषु तावद् अतिष्ठद् (वाणः), यावद् अस्य स्वयमेव गृहीतस्वभावः पृथिवीपतिः प्रसादवान् अभूत्। अविशच्च पुनरपि नरपतिभवनम्। स्वल्पैरेव च अहोभिः परमप्रीतेन मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य च परां कोटिं आनीयत नरेन्द्रेण (वाणः)।

—हर्षचरित (वाण) उच्छ्वास २

[तब गम्भीर, प्रसन्न, भयोत्पादक, रमणीय, कुतूहलजनक और पुण्यात्मा चक्रवर्ती (सम्राट्) हर्षको (बाणने) देखा। देखकर अनुग्रह-प्राप्त-सा, बँधा-सा, अभिलाषयुक्त-सा, तृप्त-सा सुखसे आनन्दाश्रुजलके विन्दुओंको छोड़ता दूरसे ही चकित हो सोचने लगा—'सो यह हैं, सुंदर नामवाले तेजपुंज, चारों समुद्रों रूपी खेतके किसान (कुरमी) देव परम-ईश्वर हर्ष। इनसे (ही) पृथिवी राजावाली है। इनके (दिये) दानके याचक, बुद्धिके शास्त्र, कवित्वके वचन, पराक्रमके साहस-कार्य, उत्साहके व्यापार, यशकी दिशाएँ, अनुरागके लोक-हृदय, गुणसमूहोंकी संख्याएँ, कौशलकी कलाएँ पर्याप्त विषय (समाने योग्य स्थान) नहीं हैं। इस राजाके शासन करते यतियोंके ही योगपट्टक (जाली दस्तावेज नहीं), मूर्तिकारोंके पार्थिव-विग्रह (मिट्टीकी मूर्तियाँ, न कि राजाओंके कलह),

भँवरोंके दान लेनेमें कलह (रस लेनेमें झगड़ा, न कि दान लेनेवाले याचकोंमें कलह), वृत्तोंके पाद-छेद (छन्दोंके पादोंके, न कि आचारके पैरोंका छेदन) है। यह (सोच) पास जा जनेऊको बायें कन्धेसे पारकर (वाणने) स्वस्ति (मंगल हो) शब्द (का उच्चारण) किया।

राजाने गंभीर स्वरसे आकाशको भरते हुये पूछा—'यह है वह वाण ?'

'जैसा देव आज्ञा देते हैं यह वही है'—इति ड्योढ़ीदारने कहा।

'इसे बिना सुर्खरू किये नहीं देखना (चाहता)' यह कह आँखको तिरछी घुमा (अपने) अत्यंत प्रिय पीछेकी ओर बैठे मालवराजके पुत्रसे बोले—'भारी लंपट है यह'। क्षणभर चुप रह वाणने निवेदन किया—'देव, वास्तविकताको न जानेसे, विश्वास न करते-से, लोगोंके वृत्तान्तको न समझे-से क्यों ऐसा फरमाते हैं ? लोगों के प्रवाद (गौगा) स्वेच्छाचारी और विचित्र होते हैं। बड़ोंको ठीकसे जाननेवाला होना चाहिये। मुझे दूसरी तौरसे नहीं समझना चाहिये। मैं सोमयाग करनेवाले वात्स्यायनोंके वंशमें जनमा ब्राह्मण हूँ। समयके अनुसार (मेरे) यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये गये। अंग-सहित वेदको (मैंने) अच्छी तरह पढ़ा। यथाशक्ति शास्त्र पढ़े। पत्नी ग्रहण कर गृहस्थ हुआ हूँ। क्या है मेरी लंपटता ? लोक-परलोक विरोधी चंचलताओंसे तो (मेरा) शैशव (जरूर) शून्य नहीं था। समय आनेपर स्वामी स्वयं मुझे जानेंगे' यह कहकर (वाण) चुप हो गया।

राजा भी—'ऐसा हमने सुना है' यह कह चुप ही रहा (और) वार्तालाप, आसन देने (की आज्ञा) आदिसे उसने अनुगृहीत नहीं किया, केवल अमृतवर्षासे नहलाते-से स्नेहयुक्त दृष्टिपात-मात्रसे भीतरकी प्रीतिको बतलाया। अस्त होनेकी इच्छावाले ढलते सूर्यके समय राजाओंको विसर्जित कर (राजा) ने भीतर प्रवेश किया। दिनके बुझते, संध्याके मद्यपात्रमें सूर्य-मण्डलके डूबते, भिक्षुओं-के चैत्यवन्दनतत्पर होते, यागकर्ता-जनोंके हवि-वषट् (होम) करते, जगत्में दीपक-समूहोंके बिखरे होते समय वाण भी निकलकर (अपने) निवासस्थान-को गया।

(वाणने॰) मन में सोचा—'देव हर्ष निश्चय बड़े उदार हैं, जो कि ऐसी बालोचित अनेक चपलताओं से कुपित कराये जानेपर भी मेरे ऊपर मन से स्नेह ही रखते हैं, मुझे भला बना देखना चाहते हैं। स्वामी लोग अपने आश्रितोंको

विना मुँहसे कहे भी विनयका उपदेश देते हैं। और फिर, धिक्कार है मुझे, जो अपने दोषकी ओर अन्धा हुआ अनादरसे दुखी हो ऐसे अत्यन्त गुणवान् (भले) राजाके विषयमें उलटा-उलटा सोचता हूँ। सब तरह से वैसा करूँगा, जिसमें यह समय पाकर मुझे यथार्थ जान सकेंगे' यह निश्चय कर अगले दिन कटक (छावनी) से निकलकर मित्रों-बन्धुओंके घरोंमें तब तक (बाण) रहा, जब तक स्वयं स्वभाव जानकर राजाने इसके ऊपर अनुग्रह किया, थोड़े ही दिनों-में अत्यन्त प्रसन्न हो राजाने उसे मान, प्रेम, विश्वास और धनकी चरम अवस्था-को प्राप्त कराया।]

चक्रवर्ती (सम्राट्) **अद्राक्षीत्** (देखा) **निगृहीतः** (पकड़ा गया) **विस्मयस्मेरः** (आश्चर्यचकित) **केदारः** (क्यारी, खेत) **कुटुम्बी** (कुरमी, किसान) **ईश्वरः** (राजा) **राजन्वती** (राजावाली) **त्यागः** (दान) **अर्थी** (याचक) **सत्त्वं** (पराक्रम) **दिङ्मुखं** (दिशायें, सारा संसार) **विषयः** (प्रदेश, स्थान) **योगपट्टकः** (जनेऊ-सा बाँधनेका पटुका, जाली अभिलेख) **पुस्तकर्मा** (मिट्टी की मूर्ति बनानेवाला) **विग्रहः** (मूर्ति, कलह) **दानं** (दान, फूलका केसर) **वृत्तं** (छन्द, आचार) **पादः** (पैर, छन्द का पाद) **अकृतप्रसादः** (अनुग्रह न किया) **प्रवादः** (निन्दा, गौगा) **उपनयनं** (जनेऊ-संस्कार) **दाराः** (पत्नी) **अभ्यागारिकः** (गृहस्थ) **चापलं** (चपलता, अनाचार) **प्रसादः** (अनुग्रह) **सविता** (सूर्य) **निर्वाति** (खतम होते समय) **सीधु** (मदिरा) **पातङ्गः** (सूर्यका) **चैत्यं** (स्तूप) **पाराशरिः** (बौद्ध भिक्षु) **वषट्** (हवनके समय-का शब्द) **यायजूकः** (बहुत याग करने वाला) **प्रकरः** (समूह) **दक्षिणः** (उदार) **कौलीनः** (आचार) **अक्षिगतः** (क्रोपभाजन) **भर्तव्यः** (भरण योग्य) **यथावस्थितः** (जैसा है) **कटकः** (छावनी, सैनिक केम्प) **अविशत्** (प्रवेश किया) **अहः** (दिन) **विस्रम्भः** (विश्वास) **द्रविणं** (धन) **परां कोटिः** (चरम स्थान) **आनीयत** (ले जाया गया)।]

अलङ्कार—

२६ (२२) **यथासंख्य**—क्रमानुसार एक-एक के लिये एक-एक बात-का कहना, जैसे—

> **एकः त्रिधा वससि चेतसि चित्रमत्र ,**
> **देव, द्विषां च विदुषां च मृगीदृशां च ।**

तापं च सम्मदभरं च रतिं च पुष्णन्,
शौर्योष्मणा च विनयेन च लीलया च ॥ (वसन्ततिलका)

[देव, यह विचित्र है कि शौर्यकी गरमीसे शत्रुओंके चित्तमें ताप करते, पंडितोंके चित्तमें विनयसे सम्मान भरते, मृगनयनियोंके चित्तमें लीलासे रतिको पुष्ट करते एक होते (भी) तीन तरहसे तुम बसते हो ।]

३०. (२३) **कारणमाला**—पूर्वमें कहीका पीछे-पीछेकी बातोंका हेतु होना । जैसे—

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं,
गुणप्रकर्षो विनयाद् अवाप्यते ।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते,
जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ॥

[जितेन्द्रिय होना विनयका कारण है, विनयसे गुणोंकी अधिकता प्राप्त होती है । गुणकी अधिकतासे लोग अनुरंजित होते हैं, लोगोंके अनुरागसे उत्पन्न होती हैं सम्पदायें ।]

अष्टादशः पाठः

इह खलु मध्यदेशे कपिलवस्तुनगरसमीपे झोतकरणी नाम पल्लिकाऽस्ति । तस्मिन् स्थाने ब्राह्मणजातिः नानूको नाम, ब्राह्मणी च सावित्री नाम प्रतिवसति स्म । (तयोश्च) कालान्तरेण दामोदरो नाम पुत्रो बभूव । स च एकादशवर्षदेशीयः कुमारः सामाथर्ववेदको गृहान् निष्क्रम्य मर्तबोधो नाम एकदण्डोऽभूत् । ततः पश्चाल्लीकटीसत्रे पाणिनिव्याकरणं श्रुत्वा सप्तवर्षपर्यन्तं सर्वं शास्त्रं अधिगम्य, विंशतिवर्षं (काले) नारोपादसमीपे प्रमाण–माध्यमिक–पारमितादिशास्त्रं श्रुतवान् । तदनु मन्त्रनयशास्त्रज्ञेन राग–वज्रेण सहावस्थितः पंचवर्षपर्यन्तम् । पश्चात् महापंडितरत्नाकरशान्तिगुरुभट्टारकपादानां पार्श्वे निराकारव्यवस्थां वर्षमेकं यावद् (अधीतवान्) । पश्चाद् विक्रमशिलां गत्वा महापंडिज्ञानश्रीमित्रपादानां पार्श्वे तत्प्रकरणं श्रुतं वर्षद्वयं यावत् ।

ततो विक्रमशिलायां सम्मितीयनिकाये प्रव्रज्य मैत्रीगुप्तनामा भिक्षुर्बभूव। सूत्राभिधर्मविनयं च श्रुत्वा वर्षमेकं (अतिष्ठत् तत्र), पंचक्रमताराम्नायेन मंत्रजापं कृतवान् कोटिमेकां चतुर्मुद्रार्थसहितेन। भट्टारकेन स्वप्ने गदितं—'गच्छ त्वं खसर्पणं'। ततः परित्यज्य विहारं खसर्पणं गत्वा वर्षमेकं यावत् निषीदति। पुनरपि गदितं (स्वप्ने) 'गच्छ त्वं कुलपुत्र, दक्षिणापथे मनभंग-चित्तविश्रामौ पर्वतौ, तत्र शबरेश्वरः तिष्ठति, स तवानुग्राहको भविष्यति। तत्र च सागरनामा (भिक्षुः) मिलिष्यति। स च राढदेशवासी राजपुत्रस्तेन सार्धं गच्छ'। पश्चाद् सागरेण मिलितम्।

उडदेशपर्यन्तं मनभंग-चित्तविश्रामयोर्वार्ता न श्रुतवान्। (गत्वा) श्रीधान्यकटके वर्षमेकं स्थितः। पश्चाद् वाकुतपड्डुदेशे स्वाधिष्ठानतारां साधयितुं आरब्धवान्। मासैकेन स्वप्नोऽभूत्—'गच्छ त्वं वायव्यां दिशि पर्वतौ पंचदशदिनेन प्राप्येते।' भट्टारिकाया वाक्येन वायव्यां दिशि संघातैः सार्धं गच्छति। पुरुषेण एकेन उक्तं-'परदिने मनभंग-चित्तविश्रामौ प्राप्येते लग्नौ। तत्र सुखेन वस्तव्यम्'। अपरदिने प्राप्तौ तौ पर्वतौ। दिनदशपर्यन्तं शिलातलपर्यंकं आरुह्य एकाग्रचित्तेन उपवासं कर्तुं आरब्धः। (ततः) शबरेश्वर आह—'तव इह जन्मनि सिद्धिर्नास्ति, देशनाः प्रकाशय'। इति उक्त्वा भट्टारकपादोऽन्तर्धानोऽभूत्।

—अद्वयवज्रचरित

[यहाँ मध्यदेशमें कपिलवस्तुनगरके पास झोतकरणी नामक गाँव है। उस स्थानमें ब्राह्मण जातिका नानुक नाम ब्राह्मण और सावित्री नामक ब्राह्मणी रहते थे। उन दोनोंके कालान्तरमें दामोदर नामक पुत्र हुआ। वह सामके अर्थका ज्ञाता ग्यारह वर्षका हो, घरसे निकलकर मर्तबोध नामक एकदंडी (संन्यासी) हो गया। उसके बाद लीकटीसत्र (पाठशाला) में सात वर्ष तक पाणिनि-व्याकरण (और) सारे शास्त्र जानकर बीस वर्षकी आयुमें नाडपादके पास (जाकर) प्रमाणशास्त्र, माध्यमिकशास्त्र, पारमिता आदि शास्त्रको पढ़ा। उसके बाद मंत्रसिद्धान्तशास्त्रोंके ज्ञाता रागवज्रके साथ पाँच वर्ष तक रहा। फिर महापंडित रत्नाकरशान्ति गुरुभट्टारकपादके पास निराकार (योगाचार) संप्रदायका एक वर्ष (अध्ययन) किया। फिर विक्रमशिला जा महापण्डित ज्ञानश्रीपादके पास उनके प्रकरण (ग्रन्थों) को दो वर्ष तक पढ़ा, और सम्मितीयनिकायमें प्रव्रज्या (संन्यास)

ले मैत्रीगुप्त नामक भिक्षु हुआ। सूत्र, अभिधर्म, विनय (त्रिपिटक) को पढ़ते एक साल (वहाँ ठहरा।) पंचक्रम विधिके अनुसार मंत्रजप करके चतुर्मुद्राका अर्थ-सहित (पुरश्चरण किया)। (महासिद्ध शवर भट्टारकने) स्वप्नमें कहा-'जा तू खस-र्पण (अवलोकितेश्वरके धाममें)'। तब विहार छोड़ खसर्पण जा एक वर्ष तक (वहाँ) बैठा। फिर (शवरपादने स्वप्नमें) कहा—'जा तू कुलपुत्र, दक्षिणापथ (दक्खिन भारत) में (जहाँ) मनभंग और चित्तविश्राम पर्वत हैं, वहाँ शवरेश्वर रहते हैं, वह तेरे ऊपर अनुग्रह करेंगे। और वहाँ (जाते) सागर नामक भिक्षु (तुझे) मिलेगा। वह राढ (पश्चिमी बंग) निवासी राजकुमार है, उसके साथ जा'। पीछे सागर मिला।

उड़ीसा तक मनभंग और चित्तविश्रामकी बात नहीं सुनी। (जा कर) श्रीधान्य-कटक (धरनीकोट, जिला गुंटूर, आंध्र) में एक वर्ष ठहरा। पीछे (वहाँसे जाकर) वाकुतपट्टदेशमें स्वाधिष्ठान ताराकी साधना आरंभ की। एक मास बाद स्वप्न हुआ—'जा तू वायव्य दिशामें दोनों पर्वत हैं, पन्द्रह दिनमें मिलेंगे।' भट्टारिका (तारा) के वाक्यके अनुसार वायव्य दिशामें (यात्रियोंके) समूहके साथ चले। एक पुरुषने कहा—'अगले दिन मनभंग, चित्तविश्राम (एक दूसरेसे) मिले मिलेंगे। वहाँ सुखसे रहना।' अगले दिन वे दोनों पर्वत मिले। दस दिन तक शिलातलपर आसन जमा उपवास करना शुरू किया। (तब) शवरेश्वरने कहा—'तुझे इस जन्ममें सिद्धि नहीं (बदी) है, (सिद्धोंके) उपदेशों-को (टीकाओं द्वारा) प्रकाशित कर।' यह कहकर (शबर) भट्टारकपाद अन्तर्धान हो गये।]

अलङ्कार—

३१ (२४) विभावना—कारणके अभावमें कार्यका बतलाना अथवा हेतुरूप क्रियाके न होनेपर भी उसके फलको बतलाना, जैसे—

अनायासकृशं मध्यं अशंकतरले दृशौ।
अभूषणं मनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः॥

[सुभ्रू (सुंदर भौंहोंवाली) की कटि अनायास क्षीण है, विना शङ्काके (ही) आँखें चंचल हैं, तरुणाईमें विना भूषणके शरीर मनोहारी है।]

३२ (२५) काव्यलिंग—वाक्यार्थ या पदार्थ जहाँ हेतुके रूपमें व्यक्त किये जाते हैं, जैसे—

(१) वाक्यार्थगत—

त्वद्वाजिराजिनिर्धूतधूलीपटलपंकिलाम् ।
न धत्ते शिरसा गंगां भूरिभारभिया हरः ॥

[तेरे घोड़ोंकी पाँतीसे उड़ाई धूलिकी राशिसे पंकिल, गंगाको अधिक भारके भयसे शङ्कर शिरपर नहीं धारते ।]

(२) वाक्यार्थगत—

यावन्नेत्रसमानकान्तिसलिले मग्नं तदिन्दीवरं,
मेघैरन्तरितः प्रिये, तव मुखच्छायानुकारी शशी ।
येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयः ते राजहंसा गताः,
त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥

[(तेरे) नेत्रसमान कान्तिवाला (जो) कमल (था, वह) (पराजित हो) पानीमें डूब गया । प्रिये, तेरे मुखका छायानुसारी चन्द्र (था, वह) मेघों द्वारा ढाँक लिया गया । जो तेरे गमनका अनुकरण करनेवाले थे, वे राजहंस (भी) चले गये, तेरी सदृशतासे मेरा विनोद करना भी दैव बर्दाश्त नहीं करता ।]

यहाँ तीसरे पादके वाक्यमें हेतु बतलाया गया है ।

एकोनविंशः पाठः

बालार्कालोकताम्रप्रवरसुरशिरश्चारुचूडामणिश्री-
सम्पत्सम्पर्करागानतिचिररचितालक्तकव्यक्तभक्तौ ।
भक्त्या पादौ तवार्य, करपुटमुकुटाटोपसुग्नोत्तमांगः
तारिण्यापच्छरण्ये, नवनुतिकुसुमस्रग्भिरभ्यर्चयामि ॥ १ ॥

दुर्लंघ्ये दुःखवह्नौ विनिपतिततनुर्दुर्भगः कान्दिशीकः,
किं किं मूढः करोमीत्यसकृदपि कृतारम्भवैयर्थ्यखिन्नः ।
श्रुत्वा भूयः क्षतनयन इव व्योम्नि चन्द्रार्कलक्ष्मीं,
आलोकाशानिबद्धः परगतिगमनस्त्वां श्रये पापहंत्रीम् ॥ २ ॥

मातापि स्तन्यहेतोर्विरुवति बहुशः खेदमायाति पुत्रे,
क्रोधं धत्ते पितापि प्रतिदिवसमसत्प्रार्थनासु प्रयुक्तः।
....
सर्वेभ्योऽभ्यर्थितार्थान् विसृजसि न च ते विक्रिया जातु काचित् ॥४॥
कल्पान्तोद्भ्रान्तवातभ्रमितजलचलल्लोलकल्लोलहेला–
संक्षोभात् क्षिप्तवेलातटविकटचटत्स्फोटमोट्टाट्टहासात्।
मज्जद्भिर्भिन्ननौकैः सकरुणरुदिताक्रन्दनिस्पन्दमन्दैः,
स्वच्छन्दं देवि, सद्यस्त्वदभिनुतिपरैस्तीरमुत्तीर्यतेऽब्धेः ॥ १० ॥
हाराक्रान्तस्तनान्ताः श्रवणकुवलयस्पर्धमानाऽयताक्ष्यो,
मन्दारोदारवेणीतरुणपरिमलामोदमाद्यद्द्विरेफाः।
कांचीनादानुबन्धोद्धततरचरणोदारमंजीरपूर्याः,
त्वन्नाथान् प्रार्थयन्ते स्मरमदमुदिताः सादरा देवकन्याः ॥ २६ ॥

—स्रग्धरास्तोत्र (कश्मीरिक सर्वज्ञमित्र)

[हे आपत्तियोंमें शरणदात्री तारनेवाली आर्ये, भक्तिपूर्वक अञ्जलि-मुकुटके अभिमानसे झुके सिरवाला हो मैं तेरे दोनों चरणोंको नवीन स्तुतिके कुसुमोंकी मालाओंसे पूजता हूँ।

(उन तेरे चरणोंको जो कि) बाल सूर्यके प्रकाश (के समान) सुरवरोंके शिरकी सुंदर लाल चूडामणियोंकी शोभा-सम्पत्तिके सम्पर्कके रंगसे न अतिचिर रची महावर द्वारा प्रकटित–आलतावाले हैं ॥ १ ॥

दुर्लंघनीय दुःखकी आगमें गिरा शरीरवाला अभागा भयभीत मैं मूढ़

क्या-क्या करता हूँ, यह (सोचता) अनेक बार (कार्य-) आरम्भ करके (उसके) व्यर्थ होनेसे खिन्न मैं,

अन्धा जैसे आकाशमें सूर्य-चन्द्रकी लक्ष्मी (प्रकाश) को देखे, वैसे दूसरोंसे बहुवार सुनकर,

प्रकाशकी आशामें बँधा (रागादि) शत्रुओंके बसमें पड़ा तुझ पापहनन-कारिणीका आश्रय लेता हूँ ॥ २ ॥

माता भी दूधके लिये पुत्रके बहुत रोनेपर खिन्न हो जाती है,

पिता भी प्रति दिन अनुचित माँगोंमें पड़नेपर क्रोध धारण करता है,

तुम तो तीनों लोकोंकी अभिलाषाके विपुल फलकी महान् कल्पवृक्षकी श्रेष्ठ लता हो, (जो) सबको प्रार्थित पदार्थोंको देती, पर कभी तुम्हारे (चित्तमें) विकार नहीं होता ॥ ५ ॥

देवि, तेरी स्तुतिमें तत्पर (वे लोग) तुरन्त सागरके तीर स्वच्छन्द उतर जाते हैं, (जो कि),

प्रलयके उद्भ्रान्त वायु द्वारा घुमाये जलकी चलती चञ्चल तरंगोंके प्रहार की हलचलसे विकट धड़ाकेवाले भारी अट्टहाससे वेलातटपर फेंके, टूटी नौकावाले करुण रोदन–क्रन्दनसे निश्चेष्ट शिथिल पड़े डूब रहे थे ॥ १० ॥

काममदसे मुदित देवकन्यायें आदर सहित तुझे नाथ मानती (तेरी) प्रार्थना करती हैं, (कैसी देवकन्यायें ?) हारोंसे भरी छातीवाली, कर्ण-कमलसे स्पर्धा करती बड़ी आँखों वाली।

मन्दारसे बढ़ाई वेणीके ताजे गन्धकी सुगन्धिसे (आकृष्ट) मस्त भँवरोंवाली,

करधनीके नादके अनुसारी अधिक उद्धत चरणोंके बड़े मञ्जीर बाजेवाली ॥२६॥

अर्कः (सूर्य) **ताम्रः** (लाल) **अनतिचिरं** (न अतिदेर हुआ) **आलक्तकं** (महावर) **भक्तः** (महावररेखा युक्त) **करपुटः** (अञ्जलि) **आटोपः** (अभिमान, हर्षातिरेक) **भुग्नः** (झुका) **उत्तमांगं** (शिर) **तारिणी** (तारनेवाली, तारा देवी) **शरण्यः** (शरण लेने योग्य) **नुतिः** (स्तुति) **अभ्यर्चयामि** (पूजता हूँ) **दुर्भगः** (अभागा) **कान्दिशीकः** (अशरण, क्या दिशा ढूँढने वाला) **असकृद्** (बार-बार) **आरम्भः** (काम शुरू करना) **वैयर्थ्य** (व्यर्थता) **भूयः** (बार-बार) **क्षतनयनः** (अन्धा) **व्योम** (आकाश) **निबद्धः** (बँधा) **परगतिः** (दूसरे, शत्रुके वशमें पड़ा) **श्रये** (आश्रय लेता हूँ) **स्तन्यं** (दूध) **विरुवन्** (रोता) **असत्प्रार्थना** (अनुचित माँग) **अग्रवल्ली** (श्रेष्ठ लता) **अभ्यर्थितः** (माँगा) **विसृजसि** (देती हो) **विक्रिया** (मनमें विकार) **जातु** (कभी) **कल्पान्तः** (प्रलय) **उद्भ्रान्तः** (उठा, पागल) **वातः** (हवा) **लोलः** (चञ्चल) **हेला** (विलास, प्रहार, वेग) **संक्षोभः** (हलचल) **वेलातटः** (समुद्रका किनारा) **चटत्** (तड़तड़ाता) **स्फोटः** (भयंकर आवाज) **मोट्टः** (मोटा, बड़ा) **मज्जन्** (डूबता) **भिन्ननौकाः** (टूट गई नावोंवाले) **निस्पन्दः** (निश्चेष्ट) **सद्यः** (तुरन्त) **अभिनुतिः** (स्तुति) **अब्धिः** (सागर) **हारा-**

क्रान्ता (हारसे भरी) कुवलयं (कमल) आयताक्षी (बड़ी आँखवाली) मन्दारः (दिव्य पुष्प वृक्ष) उदारः (बड़ा) तरुणपरिमलः (ताजी गंध) माद्यद् (मस्त हो रहे) द्विरेफः (भंवरा) कांची (करधनी, कटिभूषण) उद्धतः (चञ्चल) मञ्जीरः (मंजीरा) तूर्यं (बाजा) त्वन्नाथाः (तू स्वामी जिनकी) स्मरः (कामदेव) मदः (हर्ष, नशा)।

छन्द—

(२१) स्रग्धरा—ऐकीस अक्षर। लक्षण-'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्', जैसे ऊपर उद्धृत स्रग्धरास्तोत्रके छन्द।

अर्धसम छन्द—जिसमें चारों पाद एक समान न हो, युग्म पाद एकसे और अयुग्म पाद एकसे होते हैं, जैसे—

(२२) पुष्पिताग्रा—युग्म पाद (२, ४) तेरह अक्षरवाले, अयुग्म पाद (१, ३) बारह अक्षरवाले। लक्षण-'अयुजि नयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'। न (।।।), न (।।।), र (ऽ।ऽ), य (।ऽऽ) और न (।।।); ज (।ऽ।), ज (।ऽ।), र (ऽ।ऽ), ग (ऽ), जैसे—

मधुरमरुचिरं वचः खलानां, अमृतमहो प्रथमं पृथु व्यनक्ति।
अथ कथयति मोहहेतुमन्तर्-, गतमिव हालाहलं विषं तदेव॥
(पर्याय)

[खलोंका वचन मीठा (पर) रुचिर नहीं होता, (यद्यपि) अहो पहिले अमृत सा साफ दीखता फिर मोहके कारणको बतलाता, वही भीतर छिपा हलाहल विष है।]

यहाँ अनेकमें एकका कथन होनेसे पर्याय-अलंकार है।

अलङ्कार—

३३ (२६) स्वभावोक्ति—पशु आदिकी स्वाभाविक क्रिया, रूप आदिका वर्णन, जैसे—

लांगूलेनाभिहत्य क्षितितलमसकृद् दारयन् अग्रपद्भ्यां,
आत्मन्येवावलीय द्रुतमथ गगनं प्रोत्पतन् विक्रमेण।
स्फूर्जद्धुङ्कारघोषः प्रतिदिशमखिलान् द्रावयन्नेष जन्तून्,
कोपाविष्टः प्रविष्टः प्रतिवनमरुणोच्छूनचक्षुः तरक्षुः॥ (स्रग्धरा)

[पूँछ पटक कर पृथिवी तलको अगले पैरोंसे बार-बार फाड़ता,
अपने (शरीर) में सिमट कर फिर जल्दी पराक्रमके साथ आकाशमें उछलता,
गूँजते हुङ्कार शब्दवाला, सारे जन्तुओंको दिशाओंमें भगाता,
क्रुद्ध लाल-फूली आँखोंवाला कोपसे भरा तङ्ख हरेक वनमें घुसा है ।]

३४ (२७) अन्योक्ति—उपमेयके कहनेसे जहाँ अर्थ मालूम हो जाता है, जैसे—

न्यग्रोधे फलशालिनि स्फुटरसं किञ्चित् फलं पच्यते,
बीजान्यङ्कुरगोचराणि कतिचित् सिद्ध्यन्ति तस्मिन्नपि ।
एकस्तेष्वपि कश्चिदंकुरवरो बध्नाति तामुन्नतिं,
यां अध्वन्यजनः स्वमातरमिव क्लान्तिच्छिदे धावति ॥

[फलवाले बरगदपर साफ रसवाला कोई कोई फल पक होता है,
उसमें भी कोई कोई अङ्कुरवाले बीज सिद्ध होते हैं ।
उनमेंसे कोई श्रेष्ठ अङ्कुर उस उन्नतिको बाँधता है,
जिसके पास पथिकजन थकावट हटानेके लिये अपनी माँ की तरह दौड़ते हैं ।]

यहाँ वट वृक्षके कथन द्वारा परोपकारी पुरुषकी महिमा विना उसका नाम लिये गाई गई है ।

विंशः पाठः

अज्ञानगह्वरनिरुद्ध इवात्मवादी बालः पुनर्भवतृषाविषमूर्छितात्मा ।
एते गजा रविकरोत्करतापितेषु नैव स्थलेषु न जलेषु धृतिं लभन्ते ॥
ग्रामेषु पुष्पविकचेषु च काननेषु पारिप्लवाल्पमतयो यतयो यथैव ।
(घर्मेण) पल्वलजलं क्षयमभ्युपेति संशुष्कशेवलरजोरुणपंकलेशम् ॥
मन्दागमस्य सदसीव विजृम्भमाणं वाक्कौशलं स्वमतिशक्तिनिराकृतस्य ।
एते खगा वनतरून् परिवर्जयन्ति संशीर्णपर्णनिचयोर्ध्वविशुष्कशाखान् ॥

(एवं विचिन्तयति राजनि) स भिक्षुः कथान्तरविवक्षया स्मितं आविश्चकार । राजा समन्ततो निरीक्ष्य अन्यं अनीक्ष्यमाणो 'मामेव

अधिकृत्य प्रव्रजितेन स्मितं आदर्शितं' इति विनिश्चित्य कुतूहलाक्रान्तमतिः तं अब्रवीत्—

'विनयधीरमिदं च वपुस्तव स्मितमिदं च भदन्त विधार्यसे ।
चलति बुद्धिरियं पवनाहता वनलतेव किमत्र नु कारणम् ?'

स च भिक्षुः तदुपकारकमतित एव राज्ञः प्रोवाच—

सूर्यातपो दहति वत्स शरीरकं ते तस्मात् सुखोचितमिदं बहुरोगनीडम् ॥
वस्त्रातपत्रतरुमंदिरचंदनांबुहारादयः तदुपघातनिमित्तभूताः ।
दुःखं त्वनागतमवीचिसमुद्भवं ते नाशं प्रयास्यति नराधिप, कैरुपायैः ? ॥
कर्मन्धनः स्फुरति तत्र सदा हुताशो दुर्वृत्तशोणितवसासवपानशौण्डः ।
यो बान्धवानिव परिष्वजते प्रगाढं ज्वालाभुजैरविरलैः स्वकृतापराधान् ॥
यत्र त्वयातिथिजनप्रणयो निषेव्यो ज्वालासखीशतपरिष्वजनोचितेन ।
स त्वं व्यथामुपगतारविरश्मितप्तो हाराद् बिभेषि नतु घोरविषाद् भुजंगात् ॥

यस्योत्संगे क्षितितलरजोधूरः त्वं निषण्णः ।
प्रेम्णा येनाकरुणहृदयो पालितो वर्धितश्च ।
तं त्वं हत्वा यदि न पतितः, तत्क्षणं चित्रमेतत् ॥...
बाल्ये लालासलिलमलिनं पाणिना वक्त्रपद्मं ।
येनामृष्टं विकचकमलच्छेदिताम्रोदरेण ॥
त्वां कृत्वांके कृपणभवतः कुंचिताः काकपक्षाः ।
येना ऽऽघ्राताः सदयहृदयेनात्मजप्रेमबुद्ध्या ॥

ज्वलदनलशिखावलीपिंगलान्तस्थलं सर्वतस्तुंगनिस्संगनिच्छिद्रज्वालावृतच्छिन्नसम्भिन्ननिष्पिष्टनिष्पीडितोत्क्षिप्तलुप्तावलुप्ताश्रयप्राणिसंघा-कुला भीषणं कृपणं नरकं यदा यास्यसि प्रेरितो दारुणैः कर्मवातैरनेकोग्रदुःखप्रकर्षातिसन्तापितो दीनकंठो रटन् ऊर्ध्वबाहुज्वल(दु)च्छ्वल(च्)चक्रासिकुन्तप्रहारव्रणोद्भ्रान्तरक्ताक्षितस्तत्र चाकामतः संवसन् । ज्वलदनलकपिलमंडलाकोटरस्तब्धनेत्रैः स्फुरत्कोपरक्तोपसंदष्टदन्तच्छदैः उद्यतोग्रायुधैः अन्तकाज्ञाकरैः तिष्ठ तिष्ठेति निस्तर्जितो भीतभीतो दिशः प्रेक्षमाणः स्थितोऽस्मीति कृच्छ्रादभिव्याहरन् । यां अवस्थां अभिप्राप्स्यसि त्वं धृतो दुष्कृतैः कर्मभिर्यदि समनुविचारयेत् तद् भवान् नूनमक्रोशवः

चन्द्रपादोपमा (:) स्युर्निदाघे तु तीव्रा अमी भूयसा न त्वनभ्याहता यान्ति संवेगमग्ना जनाः प्रायशो दुःखयंत्रान्तरस्थास्तु शोचन्ति मोघं प्रलापार्तिशोकाभिभूता भृशम् ।

स्नात्वा त्वं गृहदीर्घिकाम्भसि हसत्पद्मोत्पलालंकृते ।
तीरान्तानतपुष्पपादपलताच्छायासमालिंगिते ॥
क्लिन्नस्विन्ननरास्थिपंजरवसानिर्यासपर्याकुले ।
तप्ते वैतरणीजले निपतितो दुःखात् कदा मोक्ष्यसे ॥
प्रासादे शरदभ्रशुभ्रशिखरे पुष्पावलीमंडिते ।
वीणावेणुमृदंगगीतमधुरे संप्राप्य चित्रं सुखम् ॥
नित्यं प्रज्वलितस्फुटानलशिखासन्तानजालाकुलम् ।
प्राप्यावीचिमनेकदुःखविहितः किं नाम कर्ता भवान् ॥

—(स्पोस्-खड् (तिव्वत) विहारकी तालपोथी)

[उस वनमें अजातशत्रु राजा सोचने लगा—

अज्ञानकी गुहामें रुद्ध पुनर्जन्मकी प्यासने मूर्छित-चित्त, आत्मवादी (नित्य आत्मा माननेवाले) की तरह ये हाथी न सूर्यकी किरणोंके समूहसे तपे स्थलमें और न जलमें धैर्य पाते हैं। गाँवोंमें और फूल फूले वनोंमें हलके क्षुद्र मतिवाले यतियोंकी तरह, घामसे सूखी सेवारके रजसे कुछ लाल पंकवाला डबरेका पानी क्षीण हो जाता है। आगम (शास्त्र) में मन्द (अत एव) सभामें अपनी मतिकी शक्तिमें खंडित पुरुष बोलनेका कौशल जैसे छोड़ता दिखाई देता (है), वैसे (ही) ये पक्षी गिरे पत्तों, ऊपरी सूखी शाखावाले वनवृक्षोंको छोड़ देते हैं।

(राजाके ऐसे सोचते समय) उस भिक्षुने दूसरी बात कहनेकी इच्छासे मुस्करा दिया। राजा चारों ओर देख कर दूसरे (किसी) को न देख 'मेरी ही ओर करके भिक्षु मुस्कराया' यह निश्चय कर कुतूहलवश उससे बोला—

'भदन्त, यह तुम्हारा शरीर विनयसे धीर-गंभीर है, फिर यह मुस्कुराते क्यों हो ? पवनसे झकझोरी वनलताकी तरह यह बुद्धि चंचल हुई, इसका क्या कारण है ?'

उस भिक्षुने उसके उपकारकी बुद्धिसे राजाको कहा—

वत्स, सुखपसन्द बहुत रोगोंके घर तेरे शरीरको सूर्यकी धूप जलाती है,

उसके निवारणके निमित्त कपड़ेके छत्ते, वृक्ष, महल, चंदन, जल, हार आदि हैं। राजन्, आनेवाला अवीचि नरकका तेरा दुःख किन उपायोंसे नष्ट होगा ?

(अपने) कर्मका ईंधनवाला, दुराचारीके रक्त-चरबीरूपी आसवके पीनेसें मस्त आग वहाँ सदा दहकती रहती है। जो कि बांधवोंकी तरह (अपनी) निरन्तर ज्वालारूपी भुजाओंसे अपने किये अपराधोंवालोंका गाढ़ालिंगन करती है। जहाँ सौ ज्वाला-सखियोंके आलिंन योग्य तुझे अतिथिजनवाले प्रेमका सेवन करना होगा। सो तू व्यथाको प्राप्त रविकिरणोंसे तप्त हो हारसे डरता है; घोरविष भुजंगसे नहीं। जिस (पिता बिंवसार) की गोदमें मिट्टीधूलसे धूसरित बैठा और जिसके द्वारा तू कठोर हृदय पाला-पोसा गया, उसको मार कर यदि तत्क्षण गिरा नहीं, यह अचरजकी बात है।

बचपनमें (तेरे) लारसें मलिन मुखपद्मको (अपने) फुल्लकमलविजयी लाल हथेलीवाले हाथसे पोंछा, तुझे गोदमें रखा, कुंचित केशोंको जिसने पुत्रप्रेमकी भावनासे दयायुक्त हृदयसे चूमा। जलती आगकी ज्वालावलीके पीले भीतरी भागवाले, चारों ओर ऊँची संगहीन, छिद्रहीन ज्वालासे घिरे मिले, पिसेपिसाये ऊपर फेंके लुप्त, अचलुप्त आश्रयवाले प्राणिसमुदायसे आकुल और भीषण निष्ठुर नरकमें जब दारुण कर्मकी आंधीसे प्रेरित होकर तू जाएगा। (कैसे ?) दुखाधिक्यसे अति संतापित दीनकंठ रटते ऊपर वाहु किये जलते-उछलते खड्ग, भाला, चक्रके प्रहारसे हुये घावोंसे रक्तवमन करते वहाँ जबर्दस्ती बसते, जलती आगके पीले मंडलके कोटरमें निश्चल नेत्रवाले फरफराती कोपयुक्त, लाल दातोंसे कटे ओठोंवाले तेज हथियारोंको उठाये यमराजके चाकरों द्वारा 'ठहर ठहर' इस तरह धमकाया भयभीत 'दिशायें देख रहा हूँ' यह मुश्किलसे बोलता, पाप कर्मों द्वारा पकड़ा गया तू जिस अवस्थाको प्राप्त होगा, इसे यदि अच्छी तरह विचारे, तो निश्चय सूर्यकी किरणें चन्द्रकिरणोंसी (मालूम) होंगीं, गरमीमें ये तीव्र (धूप) अधिक पीडक न होगी, प्रायः दुःखयंत्रमें स्थित वैराग्यमग्न जन प्रलाप और पीडासे अभिभूत व्यर्थ वार वार शोक करते हैं।

फूले लाल कमलोंसे अलंकृत तीरपर झुके पुष्प वृक्ष लताकी छायासे आलिंगित गृहपुष्करणीके जलमें नहाकर, तू,

भीगा पसीने पसीने मानव कंकाल,वसा चरवीसे मिले।

उबलते वैतरणीके जलमें पड़ा कब दुखसे मुक्त होगा ?

पुष्पावली-मंडित वीणा-वेणु-मृदंग वाद्यसे मधुर लगनेवाले, शरदके बादलोंसे सफेद महलोंमें चित्र-विचित्र सुख प्राप्त कर ।

नित्य प्रज्वलित फूट निकली आगकी शिखासन्तानके जालसे व्याप्त अवीचि (नरक) को प्राप्त हो अनेक दुःखोंमें पड़े आप क्या करनेवाले होगे ?]

विषम छंद—इसमें पादोंके अक्षरोंकी संख्या अनियत होती है, जैसे आर्या आदि ।

(२३) आर्या—इसके प्रथमार्धमें ३० और द्वितीयार्धमें २७ मात्रायें होती हैं, तथा गण चार मात्राओंका होता है । लक्षण—

त्रिंशन्मात्रर्षिणा विषममजो जउतलौ षष्ठः ।
न्यूनत्रिंशे चरमे षष्ठो लः सूर्यभिन्नार्या ॥

अलंकार—

३५ (२८) विरोधः—अविरोधमें भी जहाँ विरोधका भ्रम हो, जैसे—

मृणालबाहु रम्भोरु पद्मोत्पलमुखेक्षणम् ।
अपि ते रूपमस्माकं तन्वि तापाय कल्पते ॥ (दंडी)

[कमलनालसी बाहोंवाली, कदली सी जंघावाली, लाल कमल जैसे मुख और नेत्रोंवाली (तू है) तो भी पतले शरीरवाली, तेरा रूप हमें तपानेके लिये है ।]

मृणाल आदि ठंडक देनेवाली चीजें तापका कारण बनें, यह विरोधसा दीखता है।

३६ (२९) व्यतिरेक—समानता और भेदके कारणके कहने या न कहनेपर उपमान और उपमेयके भेदका करण बतलाना, जैसे—

अरत्नालोकसंहार्यं अवार्यं सूर्यरश्मिभिः ।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः ॥

[जवानीसे उत्पन्न अंधकार जवानोंकी दृष्टिको रूँधनेवाला, रत्नके प्रकाशसे न हरने योग्य है, न सूर्यकिरणोंसे निवारणीय है ।]

यह तम होनेपर भी अन्य तमसे भिन्नता रखता है ।

एकविंशः पाठः

वर्णानां अर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥
भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥
यत् पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशंभुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम् ।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥ ४ ॥

—रामचरितमानस (तुलसीदास) बाल और उत्तरकांड

[अक्षरों के अर्थसमूहोंके रसोंके भेदोंके भी, और मंगलोंके कर्ता सरस्वती तथा गणेशको मैं वन्दता हूँ ॥ १ ॥

श्रद्धा विश्वास स्वरूप भवानी और शंकरको वंदता हूँ, जिनके बिना सिद्ध लोग अपने भीतर स्थित ईश्वरको नहीं देख सकते ॥ २ ॥

शंकररूपी ज्ञानमय गुरुको मैं नित्य वंदता हूँ ।

जिसके आश्रित होनेसे टेढ़ा भी चंद्रमा सर्वत्र वंदित होता है ॥ ३ ॥

प्रभुताशाली सुकवि शंभु (स्वयंभू) ने श्रीमान् रामके चरणकमलमें रातदिन भक्तिकी प्राप्तिके लिये जिस दुर्गम रामायणको पहिले बनाया ।

उसे रघुनाथके नाममें लगा समझकर अपने भीतरके अंधकारको हटानेके लिये उसी तरह (दोहा-चौपाईमें) (मैंने) 'मानस'को भाषाबद्ध किया ॥ ४ ॥]

गोस्वामी तुलसीदाससे आठ सदियों पहिले (आठवीं सदीके उत्तरार्धमें) हुये तुलसीके आदर्श स्वयंभू महाकविके अपभ्रंशकी संस्कृतमें परिवर्तित कुछ चौपाइयाँ निम्न हैं—

रामकथानदी इयं क्रमागता ॥ १ ॥
अक्षरव्यासजलौघमनोहरा । सु-अलंकारछन्दोमत्स्यंधरा ॥ २ ॥
दीर्घसमासप्रवाहावंकिता । संस्कृतप्राकृतपुलिनालंकृता ॥ ३ ॥

देशीभाषोभयतटोज्ज्वला । कविदुष्करघनशब्दशिलातला ॥ ४ ॥
अर्थबहलकल्लोलनिष्ठिता । आशाशतसमतीर्थपरिस्थिता ॥ ५ ॥
एषा रामकथासरित् शोभमाना ।
बुधजन, स्वयंभूः विज्ञापयति, मम सदृशोऽन्यो नहि कुकविः ॥ १ ॥
—पउमचरिउ (कविराज स्वयंभूदेव) विद्याधरकांड प्रथम, संधि १।२।३

छन्द—

(२५) वैतालीय—दोनों अर्द्धोंमें ३० मात्रा। लक्षण, 'द्विः स्वरवसवोऽयुजो युजो वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः'। ६ मात्रा-र (ऽ।ऽ)-ल (।) + ग (ऽ) : ८ मात्रा + र (ऽ।ऽ) + ल (।) + ग (ऽ) जैसे—

स्रगियं यदि जीवितापहा, हृदये किन्निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं कचिद् भवेत्, अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥
(अर्थ, चतुर्थ पुस्तक पाठ ५ में दिया जा चुका है)

अलंकार—

३७ (३०) अप्रस्तुतप्रशंसा—प्रकरणमें न आये किसीकी किसी तरह प्रशंसा करना, जैसे 'स्रगियं०' में अजके पत्नीवियोगके वर्णनमें ईश्वरेच्छाको ला देना ।

द्वाविंशः पाठः

अतर्कयं च—'क्व गता सा महाटवी, कुत इदं ऊर्ध्वाण्डसंपुटोल्लेखि शक्तिध्वजशिखरशूलोत्सेधं सौधं आगतम् ? क्व च तद् अरण्यस्थलीसमास्तीर्णपल्लवशयनं, कुतस्त्यं चेदं इन्दुगभस्तिसंभारभारभासुरं हंसतूलदुकूलशयनम् ? एष च को नु शीतरश्मिकिरणरज्जुदोलापरिभ्रष्टमूर्छित इव अप्सरोगणः स्वैरसुप्तः सुन्दरीजनः ? का च इयं देवी वा अरविन्दहस्ता शारदशशांकमंडलामलदुकूलोत्तरच्छदं अधिशेते शयनतलम् ? न तावदेषा देवयोषा, यतो मन्दं मन्दं इन्दुकिरणैः संवाह्यमाना कमलिनीव संकुचति । भग्नवृन्तच्युतरसबिन्दुशबलितं पाकपांडुचूतफलमिव उद्भिन्नस्वेदरेखं

गंडस्थलं आलक्ष्यते। अभिनवयौवनविदाहनिर्भरोष्मणि कुचतटे वैवर्ण्य-मुपैति वर्णकम्। वाससी च परिभोगानुरूपं धूसरिमाणं आदर्शयतः। तद् एषा मानुषी एव। दिष्ट्या च अनुच्छिष्टयौवना, यतः सौकुमार्यं आगताः सन्तोऽपि संहता इव अवयवाः, प्रस्निग्धतमाऽपि पांडुतानुविद्धेव देह-च्छविः, स्मरपीडानभिज्ञतया नातिविशदरागो मुखे, विद्रुमद्युतिः अधर-मणिः, अनंगवाणपातमुक्ताशंकं च विश्रब्धं मधुरं सुप्यते। अस्ति मम अस्यां आसक्तिः (प्रादुर्भूता)। आसक्त्यनुरूपं पुनः आश्लिष्टा यदि, स्पष्टं आर्तरवेण एव सह निद्रां मोक्ष्यति। अथ अहं न शक्ष्यामि च अनुप-श्लिष्य शयितुम्। अतो यद् भावि तद् भवतु। भाग्यं अत्र परीक्षिष्ये, इति स्पृष्टास्पृष्टमेव किमपि आविद्धरागसाध्वसं लक्षसुप्तः स्थितोऽस्मि। अजनिष्ट मे रागाविष्टचेतसोऽपि किमपि निद्रा। पुनः प्राबुद्ध्ये। प्रबुद्धस्य च सैव मे महाटवी, तदेव तरुतलं, स एव पत्रास्तरः।

—दशकुमारचरित (दंडी) उत्तरपीठिका, उच्छ्वास ५

[मैं सोचने लगा—'कहाँ गई वह महा अटवी ? कहाँ से यह आकाशभेदी कार्तिकेयके शूल जैसा ऊँचा महल आ गया ? कहाँ है वह वनस्थलीमें बिछा (मेरा) शयन ? कहाँ का (है) यह चन्द्रकिरण-समूह जैसा चमकता हंसके पंखोंसे भरा रेशमी शयन ? और यह कौन है चन्द्र-किरणकी रस्सीके झूलों पर पड़ा मूर्छित सा स्वच्छन्द सोया अप्सराओंके गण सा सुन्दरियोंका समूह। और कौन है, कमलसे हाथोंवाली शरदके चन्द्रमंडलसी निर्मल रेशमी चादर वाली शय्यापर सो रही देवी ? यह देवकन्या नहीं है, क्योंकि चन्द्रकिरणों द्वारा धीरे-धीरे दबाई जाती कमलिनी सी संकुचित हो रही है। वृन्तसे टूट कर गिरे रस-बिन्दु-युक्त पकनेसे पीले पड़े आमके फल जैसे पसीने की रेखा-उछले कपोल दिखलाई पड़ते हैं। नवयौवनकी जलनकी आश्रित गर्मीवाले स्तनतटका लेप बेरंग हो गया है। (पहिननेके) दोनों वस्त्र भी उपयोग के अनुसार मलिनता दिखला रहे हैं। सो यह मानवी ही है। अहो, यह अभुक्त-यौवना है, क्योंकि सुकुमारता प्राप्त हुये भी (इसके) अंग गठे से हैं, अति चिकनी होने पर भी देहकी छवि (त्वचा) पीतिमा लिये ही है। कामपीडासे अनभिज्ञ होनेके कारण मुख पर बहुत स्पष्ट राग नहीं है। इसके ओष्ठ मूंगेके रंगके हैं। कामवाणके भयसे मुक्त

हो विश्वास के साथ मीठे सोया जा रहा है। मेरी आसक्ति इसमें (प्रकट हुई) है। आसक्तिके अनुसार यदि आलिंगित किया, तो अवश्य चीत्कारके साथ ही यह निद्रा छोड़ेगी। पर मैं विना आलिंगन किये सो नहीं सकूँगा। अतः जो होना हो सो होवे, यहाँ भाग्यपरीक्षा करूँगा। यह (सोच) छूये-न-छूये ही कुछ से घवरायासा बनावटी नींद सोया रहा। रागलिप्त चित्तवाला होने पर भी मुझे कुछ नींद आ गई। फिर जाग गया। जागने पर मेरेलिये वही जंगल, वही वृक्ष-तल, वही पत्तोंका विछौना (था)।]

[ऊर्ध्वांडं (आकाश) संपुटः (मंडल, पेटी) उल्लेखी (वेधनेवाला) सौधः (महल) कुतस्त्यं (कहांवाला) गभस्तिः (किरण) संभार (राशि) भासुरं (प्रकाशमान) हंसतूलं (हंसके पंखका कपास) दुकूलं (महार्घ रेशमी वस्त्र) शीतरश्मिः (चन्द्रमा) रश्मिः (किरण) परिभ्रष्टः (गिरा, पड़ा) स्वैरं (स्वेच्छासे) उत्तरच्छदं, (पलंगपोश) योषा (स्त्री) संवाह्यमाना (अंग दवाई जाती) वृन्तः (ढेप, फल-वन्धक) शबलितं (सहित) चूतफलं (आमका फल) उद्भिन्नं (उछला, निकला) गंडस्थलं (कपोल) वैवर्ण्यं (वेरंगपन, धूमिलता) वर्णकं (लेप) वाससी (साड़ी, चादर या लंहगा, चुनरी दोनों कपड़े) दिष्ट्या (अहो, हर्ष-प्रकाशक शब्द) संहताः (गठे) विद्रुमः (मूंगा) विश्रब्धं (बेखटके) आश्लिष्टा (आलिंगिता) आर्तरवः (आतंकित होनेका शब्द) लक्षसुप्तः (बनावटी सोया) अजनिष्ट (पैदा हुआ) आबिद्धः (विंधा, व्याप्त) प्राबुद्ध्ये (मैं जगा) आस्तरः (विछौना)।]

अलङ्कार—

३८ (३१)। संकर—एक दूसरेके सहायक अनेक अलङ्कारोंका एकत्र आना, जैसे—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

[अंधकार अंगोंको लेप सा रहा है, आकाश काजल सा बरस रहा है। दुष्ट पुरुषकी सेवा की तरह दृष्टि विफल हो गई।]

[यहाँ पूर्वार्धमें उत्प्रेक्षा और उत्तरार्धमें उपमा, इन दोनोंका संकर है।]

त्रयोविंशः पाठः

अथ आविर्भूय काऽपि रविकराभितप्तकुवलयदामतान्तांगयष्टिः क्लिष्ट-निवसनोत्तरीया लोहिततरं द्वितयं अक्ष्णोरुद्वहन्ती एकवेणीभूतेन केश-पाशेन नीलांशुकचीरचूडिकापरिवृता पतिव्रता-पताका इव संचरन्ती प्रणि-पतन्तं मां भुजलताद्वयेन उत्थाप्य पुत्रवत् परिष्वज्य शिरसि उपाघ्राय शिशिरेण अश्रुणा निरुद्धकंठी स्नेहगद्गदं व्यहार्षीत्–'वत्स, या हस्ते बालं अर्थपालं निधाय कथां च कांचिद् आत्मभर्तृपुत्रसखीजनानुविद्धां कृत्वा अन्तर्धानं अगात् आत्मजा मणिभद्रस्य साऽहमस्मि वो जननी। अतीतायां नु यामिन्यां देवदेवस्य त्र्यंबकस्य श्रावस्त्यां उत्सवसमाजं अनुभूय बन्धुजनं च स्थानस्थानेभ्यः संनिपतितं अभिसमीक्ष्य पत्युः पार्श्वं अभिसरामि'।

—दशकुमारचरित (दंडी) उत्तर० उच्छ्वास ५

[प्रकट हो के कोई धूपसे संतप्त कमलसी मलिन शरीरवाली मैली साड़ी–चादर पहिने दोनों आंखें अधिक लाल धारण किये एक चोटीवाले केशके साथ नीले वस्त्र और सौभाग्य चूड़ी पहिने पतिव्रताकी पताका सी डोलती प्रणिपात करते मुझे दोनों हाथोंसे उठा पुत्रकी तरह आलिंन कर शिर पर सूंघ कर, ठंडे आँसुओंसे रुद्ध कंठ हो स्नेहसे गद्गद हो बोली–'बच्चा, जो हाथमें बालक अर्थपालको रख अपने पति पुत्र और सखीजनोंके सबन्धकी कोई कथा कहकर मणिभद्र (देवता) की पुत्री अन्तर्धान हो गई, वह मैं (ही) हूँ तुम्हारी माता। बीती (कलकी) रातको श्राव-स्तीमें देवोंके देव शंकरके मेलेको देख कर स्थान–स्थानसे जमा हुये बन्धुजनोंको अवलोकन कर पतिके पास जा रही हूँ।]

[आविर्भूय (प्रकट होकर) तान्ता (मलिन) क्लिष्टं (मलिन) वेणी (चोटी) उपाघ्राय (सूंघ कर, चूम कर) व्यहार्षीत् (बोली) अनुविद्धा (सम्बद्धा) यामिनी (रात) उत्सवसमाजः (मेला)।

(ख) रस—काव्यका आत्मा रस नौ प्रकारका होता है, जैसे—

३६ (१) शृङ्गार—स्थिर प्रेमवाले तरुण–तरुणियोंका पुनः पुनः अनुरागानुभव करना शृंगार है, जा संभोग और वियोग दोनों रूपोंमें आ सकता है, वियोग का जैसे—

कावेरीतीरभूमीरुहभुजगवधूभुक्तमुक्तावशिष्टः,
कर्णाटीचीनपीनस्तनवसनदशान्दोलनस्यन्दमन्दः।
लोलल्लाटीललाटालकललितलतालास्यलीलाविलोलः,
कष्टं भो दाक्षिणात्यः प्रसरति पवनः पान्थकान्ताकृतान्तः। (स्रग्धरा)

[हाय रे, पथिक-पत्नियोंका यमराज दक्षिणासे आनेवाला पवन चल रहा है। (कैसा है वह पवन ?) कावेरीतीरके वृक्षोंकी सांपिनियों द्वारा पीकर छोड़ा बचा, कर्नाटिनोंके पीनस्तनके रेशमी वस्त्रके आंचलके डोलनेसे गतिमें मन्द हुआ, गुजरातिनोंके ललाटकी हिलती अलकरूपी सुन्दर लताके नृत्यकी लीलासे चंचल।]

४० (२) हास्य—चेष्टा, अंग, वेष के विकारोंके वर्णन द्वारा हंसाना, जैसे—

गुरोर्गिरः पंच दिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागताः कुक्कुटपादमिश्राः॥

[गुरुके वचनोंको पांच दिन पढ़ और वेदान्तके शास्त्रोंको तीन दिन। तर्क (शास्त्र) के वादोंको सूंघ कर ये श्री कुक्कुट पाद जी आये हैं)।]

चतुर्विंशः पाठः

यस्येदं सकलामलेन्दुकिरणप्रख्यैर्यशोभिर्जगद्,
व्याप्तं यश्च महाकृपापरवशश्चक्रे हितं देहिनाम्।
वीर्योत्कर्षवशान्न दुष्करशतैः खिन्नो जगद्भूतये,
यो युक्तो विनिवृत्तदोषगहनो बुद्धाय तस्मै नमः॥ १॥
व्याडाक्रान्तलतावितानगहनच्छायोपमान् ये भवान्,
विज्ञाय प्रयता भवक्षयविधौ क्षीणास्रवा ये च तान्।
साधूद्भूरजस्रमर्च्यचरणान् वृत्तान् विनीताशयान्,
वन्दे वन्द्यतमान् प्रकीर्णयशसः शिष्यान् मुनेस्तायिनः॥२॥
एतद् भक्तितया प्रणम्य शिरसा रत्नत्रयं भावतः।
कौंडिन्यप्रभृतींश्च सूत्रविनयव्याख्यानशोभाकरान्॥ ३॥
वक्ष्ये सूत्रमहं यथाविभवतः सर्वज्ञवक्त्रोद्भवम्।
तन्मे साधुजनः शृणोतु मुदितः क्लेशक्षयायोद्यतः॥ ४॥

एवं मया श्रुतं, एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति स्म जेतवनेऽनाथपिंडदस्य आरामे। तत्र भगवान् भिक्षून् आमंत्रयते स्म—'यं यूयं भिक्षवः, अनुकंपध्वं, तं यूयं भिक्षवः, चतुर्षु अवेत्यप्रसादेषु, समादापयत, विनयत, निवेशयत, प्रतिष्ठापयत। कतमेषु चतुर्षु? बुद्धे अवेत्यप्रसादे समादापयत, धर्मे, संघे, आर्यकान्तेषु शीलेषु समादापयत। तत् कस्य हेतोः? स्यात् खलु भिक्षवः, चतुर्णां भूतानां (पृथिव्यप्तेजोवायुधातूनां) अन्यथात्वं, न तु एव श्रुतवत आर्यश्रावकस्य स्याद् अन्यथात्वम्'। इदं अवोचद् भगवान्। आत्तमनसः ते भिक्षवो भगवतो भाषितं अभ्यनन्दन्।

यथा महान्तो विपुला नभ आसाद्य पर्वताः।
समन्ताद् अनुसंयान्ति निष्पिषन्तो वसुन्धराम्॥ ५॥
न तत्र हस्तिनां भूमिर्न पत्तिरथवाजिनाम्।
न चापि मंत्रयुद्धेन जयो लभ्यो बलेन वा॥ ६॥
एवं जरा च मृत्युश्च मनुष्यान् अभिमर्दति।
क्षत्रियान् ब्राह्मणान् वेश्यान् शूद्रांश्चांडालपुक्कसान्॥ ७॥
यावद् वैदूर्यनीलशशिकरखचितं व्योमतारार्कचित्रं,
यावद् वीचीतरंगप्रचलितमकरक्षोभितांबुः समुद्रः।
यावद् भूर्भूतधात्री नगनगरनदीवृक्षगुल्मोरुवप्राः,
तावन् मारावभेत्तुः त्रिभुवनमहितं शासनं जाज्वलीतु॥ ८॥
येऽभ्यागता इह सुरासुरनागयक्षगन्धर्वकिन्नरनराः श्रवणाय धर्मम्।
रक्षन्तु ते जगदिदं जिनशासनं च धर्मं मुनीन्द्रकथितं च चरन्तु नित्यम्॥९॥
शीलचंदनलिप्तांगा ध्यानप्रावरणावृताः।
बोध्यंगकुसुमाकीर्णा विहरध्वं यथासुखम्॥ १०॥

समाप्ता चेयं त्रिदंडमाला कृतिः आचार्यस्थविराश्वघोषस्य भिक्षोः सर्वास्तिवादिनो महावादिनः।

सकलामलेन्दुः (संपूर्ण निर्मल चन्द्र) प्रख्यः (समान) वीर्यः (पराक्रम) दुष्करः (कठिन काम) भूतिः (कल्याण, हित) युक्तः (जुड़ा, लगा) व्याडः (सर्प, हिंस्र जन्तु) भवः (जन्मान्तर, योनि) क्षीणास्रवः (मलरहित) साधूद्भूः (उच्च साधु) अजस्रं (निरन्तर, सदा) अर्च्यः (पूज्य) वृत्तः

(वरण किया गया) आशयः (हृदय) प्रकीर्णं (फैला) मुनिः (बुद्ध) तायी (त्राता) भावः (सद्भाव) यथाविभवं (यथाशक्ति) वक्त्रं (मुख) क्लेशः (पाप) आमंत्रयते स्म (संबोधित किया) अवेत्यप्रसादः (बहुत पसन्दगी) समादापयत (बतलाओ) विनयत (ले जाओ) आक्रान्तः (श्रेष्ठ, कमनीय) श्रुतवतः (बहुश्रुतका) आर्यश्रावकः (आर्य शिष्य, मुक्त या मुक्तिके समीप पहुँचा) अन्यथात्वं (विकार) आत्तमनाः (सन्तुष्ट मनवाले) अभ्यनन्दन् (अभिनन्दित किया) नभः (आकाश) अनुसंयान्ति (फैले हैं) निष्पिषन्तः (पीसते) पत्तिः (पैदल सेना) वाजी (घोड़ा) अभिमर्दति (मर्दन करता है) पुक्सः (म्लेच्छ, विदेशी) वैदूर्यं (हीरा) शशिकरः (चन्द्रकिरण) अर्कः (सूर्य) वीची (लहर) क्षोभितांबुः (चालित जलवाला) भूतधात्री (प्राणिधारिका) नगः (पहाड़) गुल्मः (झाड़ी) वप्रः (कोठा) मारावभेत्ता (कामदेवविदारक, बुद्ध) महितं (पूजित) शासनं (उपदेश, धर्म) जाज्वलीतु (अतिप्रकाशमान रहे) अभ्यागताः (आये) जिनः (बुद्ध) शील (सदाचार) प्रावरणं (दुशाला, ओढ़ना) बोध्यंगं (परमज्ञान-सहायक) त्रिदंडमाला (पुस्तकका नाम) सर्वास्तिवादः (एक बौद्ध संप्रदाय) महावादी (भारी वादकर्त्ता) ।

रस—

४१ (३) **करुणा**—प्रियके वियोगसे हुये शोकमें विलाप आदि करना, जैसे अजने इन्दुमतीके वियोगमें 'स्रगियं०' (पुस्तक ४, पाठ ५) आदि द्वारा किया, अथवा रामके बनवासके समय दशरथने 'किं मां वक्ष्यन्ति०' आदि (पु० ४, पाठ ७) से किया; अथवा—

विपिने क्व जटानिबन्धनं तव चेदं क्व मनोहरं वपुः ।
अनयोर्घटना विधेः स्फुटं ननु खड्गेन शिरीषकर्तनम् ॥

[वनमें कहाँ जटा बाँधना और कहाँ यह तेरा मनोहर शरीर, इन दोनोंका गढ़ना, निश्चय दैवका तलवारसे (अतिकोमल) सिरीसका काटना (जैसा) है]

४२ (४) **रौद्र**—प्रचंड क्रोधको प्रकट करना, जैसे—

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं।
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैः भवद्भिरुदायुधैः ॥

नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिनां।
अयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम्॥
(हरिणी, वेणीसंहारनाटक)

[मर्यादाहीन हथियार उठाये आप जिन नरपशुओंने इस महापातकको किया, अनुमति दी या देखा; भीम अर्जुन सहित युधिष्ठिरके साथ उनके रक्त-चरबी-मांससे, मैं (अश्वत्थामा) दिशाओंको बलि देता हूँ।]

४३ (५) वीर—धर्ममें, युद्धमें या दानमें पराक्रम दिखलाना, जैसे (धर्मवीर)—

राज्यं च वसु देहं च स्त्री च भ्रातृसुताश्च ये।
यच्च लोके ममायत्तं तद् धर्माय सदोद्यतम्॥

[राज्य, धन, देह, स्त्री और भाई-बेटे जो (हैं), जो कुछ भी संसारमें मेरा है, वह सब धर्मके लिये सदा तैयार है।]

युद्धवीर—

क्षुद्राः सन्त्रासमेते विजहतु हरयः क्षुण्णशक्रेभकुम्भाः।
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः॥
सौमित्रे, तिष्ठ पात्रं त्वमसि न हि रुषां नन्वहं मेघनादः।
किंचिद्भ्रूभंगलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि॥

[ये क्षुद्र घोडे डर छोड़ें, इन्द्रके हाथीके शिरको विदारे हुये ये (मेरे) बाण तुम्हारे देहपर गिरते बहुत लजा रहे हैं। लक्ष्मण, रुक जा, (मेरी) क्रोधोंका तू पात्र नहीं है, मैं मेघनाद हूँ। कुछ भौहोंको टेढ़ी करके समुद्रको बाँधनेवाले रामको मैं ढूंढ रहा हूँ।]

पञ्चविंशः पाठः

राजा—सखे, त्रायस्व माम् ।

विदूकः—भोः किमेतत् ? अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति । ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः ।

राजा—वयस्य, निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः तां अवस्थां अनुस्मृत्य बलवद् अशरणोऽस्मि ।

सा हि—

इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता ।
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ॥
पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती ।
मयि क्रूरे यत् तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ ६ ॥

विदूषकः—मा एवं, ननु अंगुलीयकमेव निदर्शनं अवश्यंभावी अचिन्तनीयः समागमो भवतीति ।

राजा—(अंगुलीयकं विलोक्य) अये, इदं तावद् असुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम् ।

विदूषकः—भो, इयं नाममुद्रा केन उद्घातेन तत्र भवत्या हस्ताभ्यां संप्रापिता ?

राजा—श्रूयतां, स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सवाष्पं आह 'कियच्चिरेण आर्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यति' इति ।

विदूषकः—ततः ततः ?

राजा—पश्चाद् इमां मुद्रां तदंगुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता—

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय गच्छति यावदन्तम् ।
तावत् प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ॥१२॥
तच्च दारुणात्मना मया मोहान् नानुष्ठितम् ।

—अभिज्ञानशाकुन्तल (कालिदास) अंक ६

त्रायस्व (रक्षाकर) अनुपपन्नं (अनुचित) शोकवक्तव्याः (शोकमें बताने लायक) निराकरणं (इनकार) विक्लवा (व्याकुल) प्रत्यादेशः (इन्कार) कलुषः (लिप्त, मलिन) शल्यं (कांटा) निदर्शनं (चिह्न, सगुन) प्रतिपत्तिः

(समाचार, दर्शन) प्रत्यभिहितं (उत्तर दिया) अवरोधः (रनिवास) नेता (ले जानेवाला) दारुणः (कठोर) अनुष्ठितं (किया)।

रस—

४४ (६) अद्भुत—असंभव वस्तुके देखने सुननेसे उत्पन्न आश्चर्य का वर्णन, जैसे—

मानुषीभ्यः कथं नु स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥

[मानवियोंमें ऐसा रूप कैसे संभव है ?
प्रभा-तरल ज्योति (चंद्र) पृथिवीसे नहीं उगती।]

४५ (७) भयानक—भीषण पदार्थके देखनेसे भयका संचार करनेवाला वर्णन, जैसे—

इदं मघोनः कुलिशं धारासन्निहितानलम्।
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय कल्पते ॥ (रत्नावली)

[धारके पास मुख रखनेवाला यह इन्द्रका वज्र है।
जिसका याद आना दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भपात कराता है।]

षड्विंशः पाठः

तस्य (समुद्रगुप्तस्य) विविधसमरशतावतरणदक्षस्य स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धोः पराक्रमांकस्य परशुशरशंकुशक्तिप्रासासितोमरभिन्दिपालनाराचवैतस्तिकाद्यनेकप्रहरणविरूढाकुलव्रणांकशतांकशोभासमुदयोपचितकान्ततरवर्ष्मणः, कौसलकमहेन्द्र-माहाकान्तारकव्याघ्रराज-कौरालकमंटराज-पैष्टपुरकमहेन्द्रगिरि-कौट्टूरकस्वामिदत्त-ऐरंडपल्लकदमन-कांचेयकविष्णुगोप-विमुक्तकनीलराज-वैंगेयकहस्तिवर्म-पालक्कोग्रसेन-दैवराष्ट्रककुवेर-कौस्थलपुरकधनंजय-प्रभृतिसर्वदक्षिणापथराजग्रहणमोक्षानुग्रहजनितप्रतापोन्मिश्रमाहाभाग्यस्य, रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म-गणपतिनाग-नागसेनाच्युतनन्दि-बलवर्माद्यनेकार्यावर्तराजप्रसभोद्धरणोद्वृत्तप्रभावमहतः, परिचारिकीकृतसर्वाटविकराजस्य समतट-डवाक-कामरूप-

नेपाल–कर्तृपुरादिनृपतिभिर्मालवार्जुनायन–यौधेय–माद्रकाभीर–प्रार्जुन–सनकानिकाकर–करपरिकादिभिश्च सर्वकरदानाज्ञाकरणप्रणामागमनपरितोषितप्रचंडशासनस्य, अनेकभ्रष्टराज्योत्सन्नराजवंशप्रतिष्ठापनोद्भूतनिखिलभुवनविचरणशान्तयशसः, दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहिशकमुरुंडैः सैंहलकादिभिश्च सर्वद्वीपवासिभिरात्मनिवेदनकन्योपायनदानगरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्तिशासनयाचनाद्युपायसेवाकृतबाहुवीर्यप्रसरधरणीबन्धस्य, पृथिव्यां अप्रतिरथस्य, सुचरितशतालंकृतानेकगुणगणोत्सिक्तिभिश्चरणतलप्रमृष्टान्यनरपतिकीर्तेः, साध्वसाधूदयप्रलयहेतुपुरुषस्य, अचिन्त्यस्य भक्त्यवन्तिमात्रग्राह्यमृदुहृदयस्य, अनुकंपावतः, अनेकगोशतसहस्रप्रदायिनः, कृपणदीनानाथातुरजनोद्धरणसमंत्रदीक्षाद्युपगतमनसः, समिद्धस्य, विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य, धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्य, स्वभुजबलविजितानेकनरपतिविभवप्रत्यर्पणनित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य, निशितविदग्धमतिगान्धर्वललितैर्व्रीडितत्रिदशपतिगुरुतुम्बुरुनारदादेर्विद्वज्जनोपजीव्यानेककाव्यक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य, सुचरितस्तोतव्यानेकाद्भुतोदारचरितस्य, लोकसमयक्रियानुविधानमात्रमानुषस्य, लोकधाम्नः।

देवस्य, महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्य, महाराजश्रीघटोत्कचपौत्रस्य, महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तपुत्रस्य, लिच्छिविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य, महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य, सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलं कीर्तिमितः, त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललितसुखविचरणमाचक्षाण इव भुवो बाहुरयं उच्छ्रितः स्तंभः।

यस्य प्रदानभुजविक्रमप्रशमशास्त्रवाक्योदयैः,
उपर्युपरि संचयोच्छ्रितमनेकमार्गं यशः।
पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्जटान्तरगुहा
निरोध–परिमोक्षशीघ्रमिव पांडुगांगं पयः।

एतच्च काव्यं एषामेव भट्टारकपादानां दासस्य समीपपरिसर्पणानुग्रहोन्मीलितमतेः खाद्यतपाकिकस्य महादंडनायकध्रुवभूतिपुत्रस्य सान्धिविग्रहिककुमारामात्यम(हादंडनाय)कहरिषेणस्य सर्वभूतहितसुखायास्तु।

अनुष्ठितं च परमभट्टारकपादानुध्यातेन महादंडनायकतिलभट्टकेन।

—समुद्रगुप्त–शिलालेख (प्रयागस्तंभ)

६ प०

[उस नाना सौ युद्धोंमें उतरनेमें चतुर, अपनी भुजाओंके बल और पराक्रम रूपी बन्धुओंवालेका, पराक्रमचिह्नवालेका, फरसा-बाण-अंकुश-त्रिशूल-प्रास-तलवार-तोमर-भिन्दिपाल-तीर-वैतस्तिक आदि अनेक (प्रकारके) हथियारोंके प्रयोगसे घट्ठोंके सैकड़ों चिह्नोंसे शोभा समुत्पत्तिसे संचित अधिक कमनीय शरीर वालेका, कोसलदेशके महेन्द्र, महाकान्तार देशके (राजा) व्याघ्रराज, कोरालकके मंटराज, पिंठापुरके महेन्द्रगिरि, कोट्टूरके स्वामिदत्त, एरंडपल्लके दमन, काँचीके विष्णुगोप, विमुक्तिकके नीलराज, वेंगीके हस्तिवर्मा, पालकके उग्रसेन, देवराष्ट्रके कुवेर, कुस्थलपुरके धनंजय इत्यादि सारे दक्षिणापथके राजाओंको बन्दी करने मुक्त करने और (उनपर) अनुग्रह करनेसे उत्पन्न कीर्ति सहित महान् भाग्यवालेका, रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युतनन्दी, बलवर्मा आदि अनेक आर्यावर्त (उत्तरी भारत) के राजाओंको बलपूर्वक उद्धरण उत्थान के प्रभावसे महान् हुयेका, सारे वनके राजाओंको सेवक बनाये हुयेका, समतट (समुद्र तट) वर्ती नृपतियों द्वारा मालव-अर्जुनायन-यौधेय-मद्रक-अहीर-प्रार्जुन-सनकानिक-आकर-करपरि आदि (गणों और जातियों) द्वारा करदेने-आज्ञा मानने-प्रणिपातके लिये आनेसे संतोषित प्रचण्ड शासनवालेका, अनेक भ्रष्ट (अधिकार-च्युत) राज्यों उच्छिन्न राजवंशोंके पुनः प्रतिष्ठापित करनेसे उत्पन्न अखिलभुवनविहारी शान्त यशवालेका, (कुषाण) देवपुत्र शाह शाहंशाह शक और मुरुण्डों द्वारा सिंहलवासी आदि सभी द्वीपवासियों द्वारा आत्मसमर्पण कन्या-भेंट करना गरुड चिह्नवाले (गुप्तराजवंश) से अपने जिले-प्रदेशके लिये राजाज्ञा माँगने आदि उपायसे सेवित बाहुके पराक्रमके प्रसारसे धरणी बाँधनेवालेका, भूमिपर शत्रुरहितका, सैकड़ों सुचरितोंसे अलंकृत अनेक गुणगणों की सिंचाई द्वारा चरणोंसे अन्य नरपतियोंकी कीर्तिको मर्दित किये हुयेका, साधुके उदय और असाधुके प्रलयके कारण-भूत पुरुषका, अचिन्तनीयका, भक्ति और रक्षामात्र ग्राह्य किये कोमल हृदय-वालेका, दयालुका, अनेक लाख गौओंके प्रदाताका, दरिद्र अनाथ रोगी-जनोंके उद्धारमें मन्त्रसहित दीक्षा आदिसे युक्त मनवालेका, तेजस्वीका, लोगोंके अनुग्रहके शरीरवालेका, कुवेर-वरुण-इन्द्र-यम-समानका, अपने भुजबलसे जीते अनेक राजाओंकी संपत्तिको लौटानेमें नित्य लग्न-नियुक्त पुरुषोंवालेका, तीक्ष्ण-चतुर-बुद्धि संगीतके लालित्यसे इन्द्रके गुरु तुम्बुरु नारद आदिको लज्जित किये हुयेका, विद्वानोंके उपजीव्य तथा अनेक काव्य-कृतियों द्वारा प्रतिष्ठित कविराज शब्दवालेका, सुचरित तथा प्रशंसनीय अनेक अद्भुत उदार चरितवालेका, लोकके आचार (मर्यादा)

क्रिया के अनुसरण मात्रामें मानुष (कहे जानेवाले) का, लोकके तेजवालेका।

उस देवका, महाराजश्रीगुप्त के परपोतेका, महाराजश्रीघटोत्कचके पोतेका, महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तके पुत्रका, लिच्छिवियोंके दोहतेका, महादेवी कुमारदेवीमें उत्पन्न हुयेका, पृथिवी विजयसे उत्पन्न उदय (चाल) तक व्यस्त सारे भूतलपर कीर्तिवाले, महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तका इन्द्र-भवन जानेके (बीज) वपन द्वारा ललित सुखमें विचरणको कहता हुआ सा पृथिवीकी बाँह (सा) यह स्तम्भ उठाया गया।

जिसके दान भुज-विक्रम, प्रशान्ति शास्त्रवाक्योंके उदयोंसे,
ऊपर-ऊपर संचयसे अनेक मार्गोंवाला, उठा यश।

शंकरकी जटाकी भीतरी गुफामें रोक फिर छूटनेसे शीघ्र (गामी) गंगाके श्वेत जलकी तरह तीनों लोकोंको पवित्र करता है।

इन्हीं स्वामीपादके समीप रहनेके सौभाग्यसे खुली बुद्धिवाले, खाद्यटपाकीय महादण्डनायक (महामजिस्ट्रेट) ध्रुवभूति-पुत्र सन्धि-युद्ध-(विभागीय) कुमारामात्य (पदवीधारी) महादण्डनायक हरिसेनका यह (शिला स्तम्भ पर उत्कीर्ण) काव्य सारे प्राणियोंके हित सुखके लिये हो।

(स्तम्भ खडा करनेकी क्रियाका) अनुष्ठान परमभट्टारक समुद्रगुप्तके चरणसेवक महादंडनायक तिल भट्टने पूरा किया।]

अवतरणं (उतरना) **दक्षः** (कुशल, निपुण) **पराक्रमांकः** (पराक्रम पदवी वाला) **शरः** (बाण) **शंकुः** (कील, अस्त्र) **शक्तिः** (त्रिशूल) **प्रासः** (एक हथियार) **असिः** (तलवार) **तोमर** (एक हथियार) **नाराच** (बड़ा बाण) **वैतस्तिकः** (बित्ते भरका छुरा) **प्रहरणं** (हथियार) **व्रणांकः** (घट्ठा) **उपचितः** (संचित) **कान्ततरं** (अधिक कमनीय) **वर्ष्मा** (शरीर) **कोसलाः** (छत्तीसगढ़) **उत्सन्नः** (उच्छिन्न) **उद्भूतः** (उत्पन्न) **आत्मनिवेदनं** (आत्मसमर्पण) **उपायनं** (भेंट) **गरुत्मान्** (गरुड़) **अंकः** (राजचिह्न) **विषयः** (जिला) **भुक्तिः** (प्रदेश) **शासनं** (राजाका फरमान) **प्रसरः** (फैलाव) **अप्रतिरथः** (विना शत्रुका) **सुचरितं** (सुन्दर चरित्र) **उत्सिक्तिः** (सींचना) **प्रमृष्टः** (मर्दित) **उदयः** (उत्पत्ति, अभ्युदय) **अवन्तिः** (रक्षा) **कृपणः** (दरिद्र) **आतुरः** (रोगी) **उपगतः** (सहित) **समिद्धः** (प्रज्वलित, प्रतापी) **विग्रहः** (मूर्ति, शरीर) **धनदः** (कुबेर) **अन्तकः** (यम) **प्रत्यर्पणं** (लौटाना) **व्यापृतः** (लगा) **आयुक्तः** (नियुक्त) **निशितं** (तीक्ष्ण)

विदग्धः (चतुर, विद्वान्) गान्धर्वः (संगीत) व्रीडितः (लज्जित किया) त्रिदशपतिः (देवराज, इन्द्र) उपजीव्यः (जीवनाधार) स्तोतव्यः (स्तुति योग्य) समयः (मर्यादा, करार) अनुविधानं (अनुसरण करना) धाम (तेज, भवन) उदयः (उदयाचल, अभ्युदय) आवापः (बुवाई) आचक्षाणः (कह रहा) उच्छ्रितः (उठाया) प्रशमः (प्रशान्ति) पुनाति (पवित्र करता है) निरोधः (रुकावट, रोक) मोक्षः (छुट्टी) पांडु (श्वेत) गांगं (गंगाका) भट्टारकः (स्वामी) परिसर्पणं (आगमन) उन्मीलितं (उघाड़ा) दंडनायकः (मजिस्ट्रेट) सन्धिः (सुलह) विग्रहः (युद्ध) भूतः (प्राणी) अनुष्ठितं (कार्य पूरा किया) अनुध्यातः (अनुध्यानवाला, अनुचर)।

रस—

४६ (८) बीभत्स—जिसके सुनने।या देखने से तुरन्त घृणा जुगुप्सा पैदा हो, जैसे—

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोथभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक् पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा।
आर्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरंकः करंकात्,
अङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥

(मालतीमाधव, भवभूति)

[पहिले चमड़ेको काट-काट कर फिर मोटे अधिक फूले, कंधेके खण्ड, पीठके पिंड आदि अङ्गोंमें सुलभ अतिदुर्गन्धवाले मांसोंको खा कर, (क्षुधा-)पीडित उलटी आँखोंवाला दाँत निकाले अधम प्रेत, छातीवाले कंकालसे हड्डीमें स्थित गांठके मांसको भी निर्भय खा रहा है।]

४७ (९) शान्त—ठीक ज्ञान, संसारके वैराग्यसे उत्पन्न, जैसे—

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा,
मणौ वा लोष्ठे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः,
कदा पुण्येऽरण्ये जिनजिनजिनेति प्रलपतः ॥

[सांपमें या हारमें, फूलोंकी शय्या पर या पत्थर पर, मणिमें या ढेलेमें, बलवान् शत्रुमें या मित्रमें, तृणमें, स्त्रीसम्बन्धमें समदर्शी हो मेरे दिन कब पवित्र वनमें 'जिन जिन' कहते जायेंगे।]

इति सांकृत्यायनीयायां संस्कृतपाठमालायां पञ्चमं पुस्तकं समाप्तं,
समाप्ता च पाठमाला।

संस्कृत पाठमाला

(१–५ भाग)

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

स्वतन्त्र भारत के हरएक बालक और बालिका को संस्कृत का ज्ञान होना परमावश्यक है। बिना इसके राष्ट्रभाषा हिन्दी पर पूरा अधिकार हो ही नहीं सकता। इसी लिये संस्कृत को सुगमता से सीखने के लिये सांकृत्यायन जी ने इस पुस्तक को पाँच भागों में बाँट कर बहुत ही सरल ढंग से लिखा है। पाँचों भागों के पढ़ जाने से संस्कृत भाषा तथा छन्द और अलंकार का इतना ज्ञान हो जायगा कि आप रामायण-महाभारत ही नहीं, कालिदास आदि महान् कवियों की कृतियों का रस भी मूल भाषा में ले सकते हैं।

प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा विद्याभवन

पो. बा. नं. ६९, चौक, वाराणसी–१